

समरहिल का विचार

यह एक आधुनिक स्कूल समरहिल की कहानी है।

समरहिल 1921 में स्थापित हुआ। इंग्लैण्ड के सफोल्क क्षेत्र के लाइस्टन गाँव में लन्दन से तकरीबन सौ मील दूर यह स्कूल स्थित है।

समरहिल के छात्र-छात्राओं के बारे में कुछ बता दिया जाए। कुछ बच्चे हमारे स्कूल में पाँच साल की उम्र में आए तो कुछ पन्द्रह साल के हो जाने पर। लगभग सभी बच्चे सोलह साल की उम्र तक स्कूल में रहे। सामान्य रूप से हमारे पास हर सत्र में करीब पच्चीस लड़के और बीस लड़कियाँ रहीं।

बच्चे आयु के अनुसार तीन समूहों में बाँटे गए थे। सबसे छोटे बच्चों के समूह में पाँच से सात साल के, बीच वाले समूह में आठ से दस साल के और बड़े बच्चों के समूह में ग्यारह से पन्द्रह साल के बच्चे थे।

समरहिल के शिक्षार्थियों में अक्सर कुछ विदेशी छात्र-छात्राएँ भी होते थे। 1968 में दो बच्चे स्कैन्डिनेविया के और चवांलीस अमरीका के थे।

बच्चे आयु के अनुसार समूहों में हाउस मदर के साथ रहा करते थे। बीच की उम्र के बच्चे पत्थर के बने एक भवन में रहते और बड़े बच्चे झोंपड़ियों में। बड़े बच्चों में केवल दो ही ऐसे थे जिनके अपने कमरे थे। शेष लड़के एक-एक कमरे में दो, तीन या चार की संख्या में एक साथ रहते थे। लड़कियाँ भी ऐसे ही रहती थीं। बच्चों के कमरों का निरीक्षण नहीं किया जाता था। उन्हें कमरों की हालत पर कोई टोकता नहीं था। उन्हें मुक्त छोड़ा जाता था। वे क्या पहनें, यह भी उन्हें कोई नहीं बताता था। वे अपनी मर्जी के हिसाब से तैयार होते थे।

अखबारों में कई बार समरहिल के बारे में लिखा जाता कि यह *मनमर्जी* का स्कूल है। ऐसा लिखते समय वे यह जता देना चाहते थे कि यह जंगली लोगों का एक समूह है जिसमें न कोई कायदा-कानून है, न शिष्टाचार। इसलिए समरहिल की कहानी, पूरी ईमानदारी के साथ बयान करना मुझे ज़रूरी लगता है। ज़ाहिर है कि मैं जो कुछ लिखूँगा उसमें पूर्वाग्रह होंगे। फिर भी कोशिश यह रहेगी कि मैं उसकी खूबियों के साथ उसकी तमाम कमियाँ भी बताऊँ। उसकी खूबियाँ ऐसे स्वस्थ और मुक्त बच्चों की खूबियाँ होंगी जो भय और घृणा से विकृत न हुए हों।

ज़ाहिर है कि जो स्कूल सक्रिय बच्चों को मेज़ों पर बैठाकर दिन भर निरर्थक विषय पढ़ाते हैं, वे बेमानी हैं। ऐसे स्कूल केवल उन के लिए अच्छे हो सकते हैं जिनका ऐसे स्कूलों में विश्वास है, उन नागरिकों के लिए जो ऐसे रचनाहीन और आज्ञाकारी बच्चे चाहते हैं जो एक ऐसी सभ्यता का हिस्सा बन सकें जहाँ सफलता का एक ही मानक होगा - पैसा।

समरहिल एक प्रयोग के रूप में प्रारम्भ हुआ। पर बाद में महज़ प्रयोग नहीं रह गया। बल्कि एक प्रदर्शन स्कूल में तब्दील हुआ। इसलिए क्योंकि समरहिल यह दर्शा सका कि आज्ञादी सच में कारगर है।

जब मैंने और मेरी पहली पत्नी ने यह स्कूल शुरू किया उस वक्त हमारे मन में एक मुख्य विचार था। हमारी कोशिश यह थी कि बच्चों को स्कूल के अनुरूप ढालने के बदले स्कूल को बच्चों के अनुरूप बनाएँ। जहाँ बच्चे फिट न किए जाएँ, स्कूल ही उनको फिट हो।

मैंने बरसों सामान्य स्कूलों में अध्यापन किया था। मैं उस तरीके को बखूबी जानता था। यह भी कि वह तरीका गलत है। गलत इसलिए क्योंकि वह वयस्कों की इस धारणा पर आधारित है कि बच्चा कैसा होना चाहिए, उसे कैसे सीखना चाहिए। यह धारणा उस युग में पनपी थी जब मनोविज्ञान जन्मा ही नहीं था।

हम एक ऐसा स्कूल बनाने में जुटे जहाँ बच्चों को, जैसे वे दरअसल हैं, वैसे बने रहने की आज्ञादी हो। यह कर पाने के लिए हमने हर तरह का अनुशासन, हर तरह का निर्देशन, सुझाव देना, नैतिक और धार्मिक उपदेश देने का मोह त्यागा। कई बार कहा गया कि हम बड़े साहसी हैं। पर सच पूछें तो ऐसा करने के लिए साहस की ज़रूरत न थी। ज़रूरत बस एक ही चीज़ की थी जो हमारे पास पर्याप्त रूप में मौजूद थी। ज़रूरत थी इस तथ्य में विश्वास की कि बच्चा दुष्ट नहीं, अच्छा होता है। चालीस वर्षों के अनुभव में बच्चों की अच्छाई में हमारा विश्वास कभी नहीं डिगा, बल्कि उसने पुख्ता हो 'अन्तिम आस्था' का रूप ले लिया है।

मेरी दृष्टि में बच्चा स्वाभाविक रूप से विवेकशील और यथार्थवादी होता है। अगर उसे वयस्कों के सुझावों के बिना अपने भरोसे छोड़ा जाए तो जिस सीमा तक विकसित होना उसके लिए सम्भव है, वह होता है। इसी तर्क से प्रेरित हो समरहिल वह जगह बनी, जहाँ जो बच्चे स्वाभाविक रूप से विद्वान बनने की क्षमता रखते हों वे विद्वान बनें, पर जो महज़ इस लायक हों कि वे सिर्फ सड़कें साफ कर सकते हों, वे वहीं करें। वैसे अब तक कोई सड़क सफाईकर्मी हमारे यहाँ बना नहीं है। यह बात मैं दम्भ से नहीं कह रहा। मैं सच में मानता हूँ कि मैं एक मनोरोगी विद्वान के बदले एक खुश मिज़ाज सफाईकर्मी ही बनना पसन्द करूँगा।

समरहिल भला कैसी जगह है? एक बात तो यह है कि यहाँ कक्षाओं में जाना ज़रूरी नहीं, ऐच्छिक है। बच्चे चाहें तो जाएँ, न चाहें तो सालों-साल तक न जाएँ। एक टाइमटेबल ज़रूर है, पर वह सिर्फ शिक्षकों के लिए है।

कक्षाएँ अमूमन आयु के हिसाब से लगती हैं, पर यदाकदा बच्चों की रुचि के हिसाब से भी लगती हैं। पढ़ाने के हमारे तरीके नए नहीं हैं, क्योंकि हमारा मानना है कि महज़ पढ़ाने का खास महत्व नहीं है। किसी स्कूल में भाग करने की लम्बी विधि पढ़ाने का एक खास तरीका है, यह बात केवल उनके लिए अर्थ रखती है जो भाग करने की लम्बी विधि *सीखना चाहते* हैं। पर सच्चाई यह है कि जो बच्चा विलम्बित भाग *सीखना चाहता* है, वह उसे ज़रूर *सीख लेगा*, चाहे उसे किसी भी तरीके से वह सिखाया जाए।

जो बच्चे बालवाड़ियों से समरहिल में आते हैं, वे शुरू से ही कक्षाओं में जाते हैं। पर जो बच्चे दूसरे स्कूलों से आते हैं, वे उबाऊ कक्षाओं में कभी भी नहीं बैठने का संकल्प लेकर आते हैं। वे खेलते हैं, साइकिल चलाते हैं, दूसरों के रास्ते में अटकते हैं, पर कक्षाओं में जाने से बचते हैं। कई बार यह स्थिति महीनों तक बनी रहती है। उन्हें इस स्थिति से उबरने में जो समय लगता है, वह पिछले स्कूल में कक्षाओं के प्रति जन्मी घृणा के अनुपात में होता है। हमारे पास एक बच्ची एक कॉन्वेंट से आई थी। वह पूरे तीन साल तक मस्ती करती रही जो कि एक रिकॉर्ड है। सामान्यतः बच्चों को अभ्यस्त होने में करीब तीन महीने लगते हैं।

आज़ादी के विचार से जो लोग अपरिचित हैं वे सोच रहे होंगे कि वह पागलखाना कैसा होगा जहाँ बच्चे जी में आए तो दिन भर खेल सकते हैं। कई वयस्क यह भी कहेंगे, “अगर मुझे ऐसे किसी स्कूल में भेजा जाता तो मैं वहाँ कुछ भी नहीं करता।” दूसरे लोग कहते हैं, “ऐसे बच्चों को जब उन बच्चों के साथ स्पर्धा करनी होगी जिन्हें सीखने की आदत डालनी पड़ी है तो वे स्वयं को अपंग पाएँगे।”

मुझे जैक की बात याद आती है जो सत्रह साल की उम्र में एक इंजीनियरिंग फैक्ट्री में यहाँ से गया था। एक दिन उसे उसके प्रबन्ध निदेशक ने बुलाया।

“तुम समरहिल के छात्र हो ना,” उन्होंने पूछा। “मैं यह जानना चाहता हूँ कि अब तुम अपनी शिक्षा के बारे में क्या सोचते हो। क्योंकि अब तुम्हें दूसरे स्कूलों के छात्रों से मिलने का मौका मिला है। अगर तुम्हें फिर से चुनने का मौका मिले तो तुम कहाँ पढ़ना चाहोगे, ईटन या समरहिल में?”

“बेझिझक समरहिल ही चुनूँगा,” जैक ने कहा।

“वहाँ ऐसा क्या मिलता है जो दूसरे स्कूलों में न मिले?”

जैक ने अपना सिर खुजलाया और धीरे से कहा, “मुझे पता नहीं।” फिर जोड़ा

“मुझे लगता है कि समरहिल पूर्ण आत्मविश्वास की भावना जगाता है।”

“हाँ,” प्रबन्धक ने रुखाई से कहा। “यह तो मैंने तभी देख लिया था जब तुम कमरे में घुसे थे।”

“हे भगवान!” जैक हँसा, “अगर मैंने आपको यह आभास दिया हो, तो मुझे माफ कीजिएगा।”

“नहीं यह बात तो मुझे अच्छी लगी,” निदेशक महोदय बोले, “अक्सर जब मैं किसी को अपने दफ्तर में बुलाता हूँ तो वे बेहद बेचैन और असहज लगते हैं। तुम ऐसे घुसे मानो मेरे बराबर के व्यक्ति हो। अच्छा, तुम किस विभाग में तबादला चाहते थे, यह तो बता दो।”

यह घटना दर्शाती है कि सीखना उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना व्यक्तित्व और चरित्र निर्माण। जैक विश्वविद्यालय की परीक्षा में फेल हो गया था। इसलिए क्योंकि उसे किताबी पढ़ाई से नफरत थी। पर लैम्ब के लेख और फ्रेंच भाषा के ज्ञान के अभाव ने उसे जीवन भर के लिए अपंग नहीं बना दिया। वह आज एक सफल इंजीनियर है।

इसके बावजूद समरहिल में बच्चे बहुत कुछ सीखते हैं। सम्भव है कि हमारे बारह वर्षीय छात्र-छात्राएँ अपनी उम्र के दूसरे बच्चों की सुलेख, वर्तनी या भिन्न के हिसाब में स्पर्धा नहीं कर पाएँ। पर अगर कोई ऐसी परीक्षा हो जिसमें मौलिकता की ज़रूरत हो तो हमारे बच्चे दूसरों को पछाड़ सकते हैं।

हमारे स्कूल में कक्षा परीक्षाएँ नहीं होती थीं। पर मैं कभी मज़े के लिए प्रश्नपत्र बना देता था। एक ऐसी ही परीक्षा की बानगी देखें:

ये कहाँ हैं: मैड्रिड, थर्सडे द्वीप, बीता हुआ कल, प्रेम, लोकतंत्र, घृणा, मेरा जेबी पेंचकस। (मुझे अफसोस है कि इस अंतिम सवाल का कोई ऐसा जवाब न मिला, जो उसे वापस पाने में मेरी मदद करता।)

निम्न शब्दों के अर्थ लिखो (शब्द के आगे लिखी गई संख्या अपेक्षित उत्तरों की संख्या बताती है):

हाथ (3) ... केवल दो ही बच्चों ने तीसरा अर्थ लिखा - एक घोड़े को नापने की मानक इकाई। पीतल (4) ... धातु, गाल, सेना के आला अफसर और ऑर्केस्ट्रा का एक हिस्सा। हैमलेट के ‘टू बी और नॉट टू बी’ संवाद का समरहिल भाषा में अनुवाद करो।

ज़ाहिर है कि ये सवाल गम्भीरता से नहीं पूछे गए थे और बच्चों को इनके जवाब लिखने में खूब-खूब मज़ा आया। नए आए बच्चों के जवाब देने का स्तर उन बच्चों

का सा नहीं था जो यहाँ के वातावरण से वाकिफ हो चुके हों। इसलिए नहीं कि उनमें अक्ल नहीं है। बल्कि इसलिए क्योंकि सवालों के गम्भीर जवाब देते-देते हल्का-फुल्का रहने का तरीका उन्हें परेशान करता है।

हमारे शिक्षण का यह एक विनोदी पक्ष है। वैसे सभी कक्षाओं में काफी काम होता है। अगर किसी कारण से कोई शिक्षक/शिक्षिका तयशुदा दिन पर अपनी कक्षा नहीं ले पाती तो छात्र-छात्राओं को बहुत बुरा लगता है।

नौ वर्षीय डेविड को कुकुर-खाँसी हो गई और उसे दूसरों से अलग रखना पड़ा। वह ज़ोर ज़ोर से रोया। “मैं रॉजर की भूगोल की कक्षा में नहीं जा पाऊँगा।” डेविड प्रायः अपने जन्म के समय से ही समरहिल में था। पाठों की उपयोगिता पर उसके स्पष्ट विचार थे। डेविड आज लंदन विश्वविद्यालय में गणित का व्याख्याता है।

कुछ साल पहले स्कूल की एक औपचारिक बैठक में (जिसमें स्कूल के सभी नियम तय किए जाते हैं और प्रत्येक छात्र-छात्रा व शिक्षक का एक-एक मत होता है) यह तय किया गया कि कुछ खास तरह के नियम तोड़ने वालों को सप्ताह भर तक कक्षाओं से बाहर रखा जाए। बच्चों ने इस सुझाव का विरोध किया। उनका कहना था कि यह सज़ा बहुत कठोर है।

मेरे सहशिक्षकों और मुझे परीक्षाओं से घृणा है। हमारी नज़र में विश्वविद्यालय की परीक्षाएँ अभिशाप हैं। पर हम उनमें पूछे जाने वाले आवश्यक विषय पढ़ाने से मना नहीं कर सकते। ज़ाहिर है कि जब तक परीक्षाओं का अस्तित्व है हम उनके गुलाम हैं। इसलिए समरहिल के सभी शिक्षक मानक शिक्षण की योग्यता रखते हैं।

अधिकांश बच्चे ये परीक्षाएँ देना नहीं चाहते हैं। केवल वे बच्चे ही ये परीक्षाएँ देते हैं जो विश्वविद्यालय में दाखिला चाहते हैं। उन्हें ये परीक्षाएँ खास कठिन नहीं लगती। अमूमन वे चौदह साल की उम्र में पूरी गम्भीरता से काम शुरू करते हैं। तकरीबन तीन साल तक इनकी तैयारी करते हैं। पहली कोशिश में इनमें उत्तीर्ण तो नहीं होते। पर जो महत्वपूर्ण है वह यह कि वे हताश न होकर फिर से कोशिश करते हैं।

समरहिल शायद दुनिया का सबसे खुश स्कूल है। यहाँ बच्चे नागा नहीं करते। उन्हें घर की याद नहीं सताती। बिरले ही लड़ाइयाँ होती हैं। हाँ उनकी आपसी तकरारें ज़रूर होती हैं। पर हम जब बच्चे थे उस समय हमारी जैसी लड़ाइयाँ होती थीं, वैसी यहाँ कम होती हैं। मैं बच्चों को रोते नहीं सुनता, क्योंकि उनके मन में उतनी नफरत नहीं होती जितनी दबाए गए बच्चों में होती है। घृणा से घृणा जन्मती है और प्यार से प्यार। प्यार का मतलब है बच्चों को समर्थन देना। यह किसी भी स्कूल के लिए ज़रूरी है। अगर आप उन्हें सज़ा देते हैं, उन पर चीखते-चिल्लाते

हैं, तो आप बच्चों के पक्ष में नहीं हैं। समरहिल एक ऐसा स्कूल है जहाँ बच्चे जानते हैं कि उनका पक्ष लिया जाता है।

हम इन्सानी कमज़ोरियों से ऊपर नहीं हैं। एक बसन्त का मौसम मैंने आलू बोते बिताया था। और मैंने पाया कि जून में किसी ने आठ पौधे उखाड़ फेंके। मैंने खूब शोर मचाया। पर मेरे शोर मचाने और किसी तानाशाह के शोर मचाने में फर्क है। मेरा शोर आलुओं के बारे में था। पर कोई तानाशाह इसमें नैतिकता का सवाल उठाता। वह सही या गलत की बात करता। मैंने यह नहीं कहा कि आलू के पौधे चुराना गलत काम था। मैंने इसे अच्छे या बुरे का मुद्दा नहीं बनाया। मैंने इसे मेरे आलू का मुद्दा बनाया। वे मेरे आलू थे और उन्हें छेड़ा नहीं जाना चाहिए था। आशा है मैं यह अन्तर साफ कर पा रहा हूँ।

चलिए, बात दूसरी तरह से रखता हूँ। मैं बच्चों के लिए कोई ऐसी सत्ता नहीं हूँ जिससे डरा जाए। मैं ठीक उनके समान हूँ। और अगर मैं अपने आलुओं के लिए शोर मचाता हूँ तो उसका उतना ही महत्व है जितना किसी लड़के का उस वक्त शोर मचाना जब कोई उसकी साइकिल का टायर पंचर कर दे। अगर आप बच्चे के समान हैं तो बच्चों के साथ झगड़ने में कोई खतरा नहीं है।

ज़रूर कुछ लोग कहेंगे, “यह सब बकवास है। समता यहाँ हो ही नहीं सकती। नील बॉस है, वह बड़ा है, बुद्धिमान है।” यह बात भी सच है। ज़ाहिर है कि मैं ही बॉस हूँ। अगर कहीं आग लगे तो बच्चे मेरे पास ही आएँगे। उन्हें पता है कि मैं बड़ा हूँ, ज़्यादा जानता हूँ। पर इस बात का उस स्थिति पर कोई असर नहीं पड़ता जब हम एक ही धरातल पर मिलते हैं। जैसे आलू के खेत में।

जब पाँच साल के बिली ने मुझे कहा कि मैं उसके जन्मदिन की पार्टी से चला जाऊँ क्योंकि मुझे बुलाया नहीं गया था तो मैं बिना हिचक चला आया। ठीक वैसे ही जैसे बिली मेरे कमरे से उस वक्त बाहर चला जाता है जब मुझे उसका साथ नहीं चाहिए होता। छात्र-छात्राओं और शिक्षकों के इस रिश्ते को समझाना शायद आसान नहीं। पर समरहिल आने वाला हरेक व्यक्ति यह समझता है कि यही रिश्ता, आदर्श रिश्ता है। मेरे सहशिक्षकों के प्रति बच्चों के दृष्टिकोण में भी यही झलकता है। रूड जो रसायन शास्त्र पढ़ाता है उसे डेरेक नाम से बुलाया जाता है। शेष शिक्षक-शिक्षिकाएँ भी हैरी, उला और पैम हैं। मैं नील हूँ और रसोईदारिन एस्थर।

समरहिल में सबके अधिकार समान हैं। मेरे पियानो तक आने की किसी को अनुमति नहीं है और मैं बिना अनुमति किसी बच्चे की साइकिल नहीं छू सकता। स्कूल की औपचारिक बैठक में किसी छह साल की बच्ची के मत का वज़न उतना ही है जितना मेरे मत का।

पर ज्ञानी जन कहेंगे कि व्यावहारिक रूप में तो वयस्कों की आवाज़ों का ही महत्व रहता है। क्या छह साल की बच्ची अपना हाथ उठाने के पहले तब तक रुकती नहीं जब तक वह यह नहीं देख लेती कि तुम्हारा मत क्या है? काश वे सच में रुकते, मेरे तमाम सुझाव धराशायी होते रहते हैं। जो बच्चे आज्ञाद होते हैं वे आसानी से प्रभावित नहीं होते। इसका कारण है भय का न होना। और सच तो यह है कि भय का न होना ही किसी बच्चे के लिए सबसे उम्दा चीज़ है।

हमारे बच्चे अपने शिक्षकों से नहीं डरते। हमारा एक नियम यह है कि रात दस बजे के बाद रिहाइशी भवन की पहली मंजिल में शान्ति रहेगी। एक रात करीब ग्यारह बजे तकियों से युद्ध छिड़ा हुआ था। मैं अपनी मेज़ से जहाँ मैं बैठा लिख रहा था शिकायत करने उठा। मैं जब वहाँ पर पहुँचा तो मैंने पाया कि गलियारा शान्त और खाली है। अचानक एक आवाज़ आई, “अरे यह तो नील ही है।” और फिर से मस्ती चालू हो गई। जब मैंने समझाया कि मैं नीचे एक किताब लिखने में जुटा हूँ तो उन्होंने चिन्ता जताई और शोर न मचाने का वादा किया। वे छुपे इसलिए थे क्योंकि उन्हें यह शक हुआ था कि उनका सोने का समय जाँचने वाले अफसर, जो उनमें से ही एक होता था, उनकी टोह लेने पहुँच गया है।

मैं वयस्कों का डर न होने पर बल देना चाहता हूँ। एक नौ वर्षीय बच्चा आकर मुझे खुद बताता है कि उसकी बॉल से एक खिड़की टूट गई है। वह यह इसलिए बता सकता है क्योंकि उसे मेरी नाराज़गी या नैतिक आक्रोश का भय नहीं है। हो सकता है कि उसे खिड़की सुधरने की लागत देनी पड़े पर उसे भाषण सुनने या सज़ा पाने का डर नहीं रहता।

कुछ साल पहले स्कूल की सरकार से सबने त्यागपत्र दे दिया और कोई भी चुनाव लड़ने को तैयार नहीं था। मैंने मौके का फायदा उठाकर एक नोटिस लगाया। “सरकार की नामौजूदगी में मैं खुद को तानाशाह घोषित करता हूँ। नील की जय हो।” तुरन्त फुसफुसाहटें शुरू हो गईं। दोपहर में छह साल का विविएन मेरे पास आया और उसने कहा, “नील मैंने व्यायामशाला की एक खिड़की तोड़ी है।”

मैंने इशारे से उसे हटाते हुए कहा, “ऐसी छोटी-छोटी बातें लेकर मेरे पास न आया करो।” वह लौट गया।

कुछ देर बाद वह लौटा और बताने लगा कि उसने दो खिड़कियाँ तोड़ी हैं। मैंने जानना चाहा कि माजरा क्या है। उसने कहा, “मुझे तानाशाह पसन्द नहीं हैं और मुझे भूखे रहना भी पसन्द नहीं है।” (बाद में पता चला कि तानाशाही का विरोध रसोईदारिन पर ज़ाहिर करने की कोशिश की गई थी। इसपर वह रसोई बन्द कर घर भाग गई थी।)

मैंने पूछा, “तो तुम इस बारे में क्या करने वाले हो?”

“और खिड़कियाँ तोड़ूँगा!”

“ठीक है, जारी रखो,” मैंने कहाँ और उसने तोड़-फोड़ जारी रखी।

जब वह लौटा तो उसने बताया कि वह सत्रह खिड़कियाँ तोड़ चुका है। “पर जान लो,” वह पूरी गम्भीरता से बोला, “मैं हरेक की मरम्मत के पैसे चुकाऊँगा।”

“कैसे?”

“अपने जेब खर्च से। चुकाने में कितना समय लगेगा?”

मैंने फटाफट हिसाब लगाया। “लगभग दस साल” मैंने कहाँ। एक मिनट को वह उदास हुआ, तब अचानक उसका चेहरा चमक उठा। वह बोला, “पर, मुझे पैसे नहीं चुकाने होंगे।”

“पर निजी सम्पत्ति के नियम का क्या होगा?” मैंने जानना चाहा। “वे खिड़कियाँ मेरी निजी सम्पत्ति हैं।”

“वह तो मैं जानता हूँ, पर अब यह नियम कहाँ है? सरकार ही नहीं है। सरकार ही तो नियम बनाती है।”

फिर शायद मेरे चेहरे का हावभाव देख उसने जोड़ा, “फिर भी मैं सबके पैसे चुकाऊँगा।”

पर उसे पैसे नहीं देने पड़े। घटना के कुछ समय बाद मैं लन्दन में भाषण दे रहा था। वहाँ मैंने इस घटना का जिक्र किया। भाषण खत्म होने पर एक नौजवान मेरे पास आया, मुझे एक पाउण्ड का नोट थमाते हुए बोला “ये पैसे नन्हे शैतान की खिड़कियों के लिए हैं।” इस घटना के दो साल बाद तक विविएन, लोगों को खिड़कियाँ तोड़ने और उसके पैसे चुकाने वाले व्यक्ति के बारे में बताता रहा। “वह आदमी बड़ा बेवकूफ ही होगा क्योंकि उसने मुझे देखा तक नहीं था।”

बच्चे अपरिचित लोगों से उस वक्त सहज ही सम्पर्क बना लेते हैं जब उनमें अनजान चीज़ों का भय नहीं होता। जिस विख्यात ब्रिटिश आत्मसंयम की बात की जाती है, उसकी जड़ में दरअसल भय होता है। इसलिए वे लोग ही अधिक मितभाषी होते हैं जो बेहद धनी होते हैं। समरहिल के बच्चे अपरिचित आगंतुकों से जिस दोस्ताना अंदाज़ से मिलते हैं वह मेरे और मेरे सहशिक्षकों के लिए गर्व का विषय है।

पर मैं यह भी स्वीकारता हूँ कि हमारे कई मेहमान हमारे बच्चों के लिए रोचक होते हैं। उन्हें जिनके आने की खुशी नहीं होती है वे हैं शिक्षक। खास तौर से संजीदा शिक्षक जो बच्चों के बनाए चित्रों और उनके लेखन को देखना चाहता है। वे उनकी खुलकर अगवानी करते हैं जो उन्हें यात्रा या साहसिक भ्रमण के बारे में बताते हैं।

सबसे रोचक उन्हें लगता है हवाई जहाज़ उड़ाने की बातें सुनना। कोई मुक्केबाज़ या टेनिस खिलाड़ी भी तुरन्त बच्चों से घिर जाता है। पर सिद्धान्त छाँटने वालों से बच्चे कोसों दूर भागते हैं।

मेहमानों की एक टिप्पणी सबसे ज़्यादा दोहराई जाती है। वह यह कि उन्हें पता नहीं चल पाता कि शिक्षक कौन है, और छात्र कौन। यह सच है। एकात्मता की भावना वहाँ खूब मज़बूत होती है जहाँ बच्चों को अनुमोदन मिलता है। शिक्षक के रूप में बच्चे उन्हें अलग से भाव नहीं देते। शिक्षक और छात्र एक साथ खाना खाते हैं और उन्हें एक से सामुदायिक नियमों का पालन करना पड़ता है। अगर शिक्षकों को कुछ खास सुविधाएँ दी जाएँ तो बच्चों को यह पसन्द नहीं आता।

जब मैंने शिक्षकों के साथ हर सप्ताह मनोविज्ञान पर चर्चाएँ शुरू कीं, तो बच्चों में यह बड़बड़ाहट शुरू हुई कि यह उचित नहीं है। मैंने योजना बदली और इन बैठकों को बारह साल से अधिक उम्र के सभी लोगों के लिए खोल दिया। हर मंगलवार को मेरा कमरा उत्सुक बच्चों से भरने लगा। वे न केवल सब कुछ ध्यान से सुनते, बल्कि अपना मत भी ज़ाहिर करते। बच्चों ने जिन विषयों पर चर्चाएँ कीं वे थे: हीन भावना, चोरी का मनोविज्ञान, गुण्डे का मनोविज्ञान, हास्य-विनोद का मनोविज्ञान, मनुष्य नैतिकवादी क्यों बना?, हस्तमैथुन, भीड़ का मनोविज्ञान। ज़ाहिर है कि ऐसे बच्चे जब बाहरी जीवन में उतरेंगे तो उन्हें अपने और दूसरों के बारे में व्यापक समझ होगी।

समरहिल में आने वाले मेहमान एक सवाल हमेशा पूछते हैं, “क्या बच्चे बाद में स्कूल को यह दोष नहीं देंगे कि स्कूल ने उन्हें गणित या संगीत क्यों नहीं सिखाया?” इस सवाल का जवाब यह है कि फ्रेडी बीथोविन या टॉमी आइंस्टीन को उनके विषयों से कोई दूर नहीं रख सकता।

बच्चे का काम है कि वह अपनी ज़िन्दगी जिए, वह ज़िन्दगी नहीं जो उसके आतुर माता-पिता सोचते हैं उसे जीनी चाहिए। ना ही वह जो कोई शिक्षाविद् श्रेष्ठतम मानता हो। वयस्कों की दखलंदाजी और उनके निर्देश रोबोट की पीढ़ी ही तैयार कर सकती है।

आप बच्चों को संगीत या कोई दूसरा विषय ज़बर्दस्ती नहीं सिखा सकते। ऐसा करने का अर्थ होगा उन्हें इच्छाशक्तिहीन वयस्कों में तब्दील करना। मतलब आप उन्हें *यथास्थिति* स्वीकारने वाले ही बना पाएँगे। यह उस समाज के लिए तो बिल्कुल सही है जो ऐसे आज्ञाकारी नागरिक चाहता हो जो उबारू मेज़ों पर बैठें, जो दुकानों में खड़े हों, ठीक साढ़े आठ बजे की भूमिगत रेल पकड़ने वाले हों। संक्षेप में ऐसा समाज जो डरे हुए छोटे मानव के कन्धों पर टिका हो। मौत से डरे ऐसे आतंकित लोगों के कन्धों पर जो सिर्फ़ हाँ में हाँ मिलाना जानते हों।

समरहिल पर एक नज़र

समरहिल के एक सामान्य दिन का ब्यौरा देता हूँ। नाश्ता सुबह सवा आठ से नौ बजे के बीच निपटता है। शिक्षक और बच्चे रसोई से अपना-अपना नाश्ता लेकर पास के भोजनागार में आते हैं। साढ़े नौ बजे जब पाठ शुरू होते हैं, उसके पहले बच्चों को अपने बिस्तर आदि समेट लेने होते हैं।

हर सत्र की शुरुआत में एक टाइमटेबल लगा दिया जाता है। उसके अनुसार सोमवार को डेरेक प्रयोगशाला में पहली कक्षा और मंगलवार को दूसरा कक्षा पढ़ाता है। अँग्रेज़ी और गणित के लिए मेरा भी ऐसा ही टाइमटेबल है और मॉरिस का भूगोल और इतिहास के लिए। छोटे बच्चे (सात से नौ साल वाले) अमूमन अपने शिक्षक के साथ सुबह का समय बिताते हैं। पर वे भी विज्ञान या कला के कमरे में जाते हैं।

किसी भी बच्चे को पाठों के लिए उपस्थित रहने पर बाध्य नहीं किया जाता। पर अगर जिमी सोमवार को अँग्रेज़ी की कक्षा में आने के बाद अगले सप्ताह शुक्रवार तक न आए, तो दूसरे बच्चे आपत्ति करते हैं। क्योंकि वह सबकी प्रगति को अटका देता है। वे उसे आगे बढ़ने में बाधक मान अपने समूह से निकाल भी सकते हैं।

पाठ करीब एक बजे तक चलते हैं। पर बालवाड़ी और प्राथमिक कक्षाओं के बच्चे साढ़े बारह बजे खाना खा लेते हैं। खाना दो खेपों में होता है। शिक्षक और बड़े बच्चे डेढ़ बजे खाने बैठते हैं। दोपहर सबके लिए पूरी तरह खाली होती है। वे उस समय क्या करते हैं मुझे पता नहीं। मैं बागवानी करता हूँ। उस वक्त मुझे छोटे बच्चे कम ही नज़र आते हैं। कुछ बच्चे डाकू-डाकू खेलते दिख जाते हैं। कुछ बड़े बच्चे मोटरों और रेडियो या चित्रकला में व्यस्त हो जाते हैं। मौसम अच्छा हो तो बड़े बच्चे खेलते हैं। कुछ वर्कशॉप में खुटपुट करते हैं। अपनी साइकिलें सुधारते हैं, नावें या बन्दूकें बनाते हैं।

शाम चार बजे चाय होती है। पाँच बजे अन्य गतिविधियाँ शुरू होती हैं। प्राथमिक कक्षाओं के बच्चे किताबों से कहानी सुनना पसंद करते हैं। उनसे थोड़े बड़े कला कक्ष में काम करना पसन्द करते हैं - चित्रकारी, लिनोलियम से काटकर बनाई गई आकृतियाँ, चमड़े का काम, टोकरियाँ बनाना आदि। मिट्टी के बर्तन वाले कक्ष में भी काफी व्यस्तता रहती है। दरअसल वहाँ सुबह और शाम काफी भीड़ रहती है।

सबसे बड़े बच्चे पाँच बजे के बाद वहाँ काम करते हैं। लकड़ी और धातु कार्यशालाएँ भी हर रात पूरी तरह भरी रहती हैं।

सोमवार की शाम बच्चे सिनेमा देखने जाते हैं। बृहस्पतिवार को फिल्म बदलती है। जिन बच्चों के पास पैसे होते हैं वे उस रात फिर से जाते हैं। मंगल की रात शिक्षक और बड़े बच्चे मनोविज्ञान पर मेरा भाषण सुनते हैं। उस समय छोटे बच्चों के पठन समूह चलते हैं। बुध की रात नृत्य संध्या होती है। एक बड़ी ढेरी में से वे नृत्य संगीत के रिकॉर्ड चुनते हैं। बच्चे बेहद अच्छा नाचते हैं। हमारे मेहमानों में से कईयों ने टिप्पणी की है कि हमारे बच्चों के साथ नाचने पर उनमें हीन भावना जगती है। बृहस्पतिवार रात कुछ खास नहीं होता। बड़े बच्चे लाइस्टन या एल्डबर्ग जाकर फिल्म देखते हैं। शुक्रवार की रात खास तैयारी के लिए छोड़ी जाती है, जैसे किसी नाटक की तैयारी।

हस्तशिल्प का कोई तयशुदा टाइमटेबल नहीं है। लकड़ी के काम के कोई तयशुदा पाठ नहीं हैं। जो उनकी इच्छा हो वह बच्चे बनाते हैं। अक्सर वे रिवाल्वर या बन्दूक, नाव या पतंग बनाना पसन्द करते हैं। बारीक, पेचीदा जोड़ लगाना सीखने में उनकी रुचि नहीं है। बड़े बच्चे भी पेचीदा बढ़ईगिरी पसन्द नहीं करते। मेरे पसन्दीदा शौक, पीतल के काम में भी अधिक बच्चे रुचि नहीं लेते। आखिर किसी पीतल के कटोरे के साथ कल्पना शक्ति की कितनी उड़ानें भरी जा सकती हैं? किसी भी खुशनुमा दिन आप समरहिल में लड़कों को डाकू-डाकू खेलते पाएँगे। वे हर कोने में छिपे किसी साहसिक कारनामे में जुटे मिलेंगे। पर आप लड़कियों को देखें तो वे भवन के अन्दर या उसके आसपास ही मिलेंगी, और कभी भी वयस्कों से ज़्यादा दूर नहीं।

कला कक्ष अक्सर लड़कियों से भरा मिलेगा। वे कपड़े पर चित्रकारी करतीं और उससे खूबसूरत चीज़ें बनातीं मिलेंगी। मुझे लगता है कि छोटे लड़के अधिक रचनात्मक होते हैं। कम से कम मैंने यह किसी छोटे लड़के से नहीं सुना कि वह ऊब रहा है क्योंकि उसे यह समझ नहीं आ रहा कि वह क्या करे। पर यह मैं कभी-कभार लड़कियों को कहते सुनता हूँ।

सम्भव है कि मुझे लड़के अधिक रचनाशील इसलिए लगते हों क्योंकि हमारे स्कूल में लड़कों के लिए अधिक तैयारी है। दस साल या उससे अधिक उम्र की लड़कियों की लोहे या लकड़ी की कार्यशाला में खास रुचि नहीं रहती। इंजनों से छेड़छाड़ करने की इच्छा उनमें नहीं होती। ना ही वे बिजली या रेडियो से आकर्षित होती हैं। उन्हें कलात्मक काम पसन्द आते हैं। इसमें मिट्टी के बर्तन, लिनोलियम की आकृतियाँ, चित्रकारी, सिलाई शामिल हैं। लेकिन कुछ के लिए यह पर्याप्त नहीं है। कुछ लड़के भी लड़कियों की तरह रसोई के कामों में खास रुचि रखते हैं। कई

लड़के और लड़कियाँ अपने नाटक खुद लिखते और निर्देशित करते हैं। उनके लिए वेशभूषा और मंचसज्जा भी वे खुद ही करते हैं। सामान्य तौर पर कहा जा सकता है कि उनके अभिनय कौशल का स्तर काफी ऊँचा है। क्योंकि उनका अभिनय ईमानदार है, दिखावा भर नहीं है।

लड़कियाँ भी रसायन शास्त्र की प्रयोगशालाओं में उतना ही जाती हैं जितना लड़के। यही एक जगह है जहाँ नौ साल से बड़ी लड़कियाँ जाना पसन्द नहीं करती।

हाँ, स्कूल बैठकों में भी लड़कियाँ, लड़कों की तुलना में कम सक्रिय भागीदारी करती हैं। पर इसका कोई स्पष्ट कारण मेरे पास नहीं है।

कुछ साल पहले तक लड़कियाँ जब समरहिल आती थीं तो कुछ बड़ी होने पर ही आती थीं। कॉन्वेंट और बालिका शालाओं में फेल हुई बच्चियों की संख्या काफी होती थी। ऐसे किसी बच्चे को मैं मुक्त शिक्षा का सच्चा उदाहरण नहीं मानता जो देर से आए। उनके माता-पिता आज़ादी को पसन्द करने वाले निश्चित रूप से नहीं हैं। क्योंकि अगर ऐसा होता तो उनकी बेटियाँ समस्याग्रस्त भी नहीं होतीं। पर जब समरहिल में ऐसी लड़कियों को उनकी खास कमज़ोरी से उबार लिया जाता है तो माता-पिता उसे फट से किसी 'अच्छे स्कूल' में दाखिला दिलवाने ले जाते हैं जहाँ वह ढंग से 'शिक्षित' हो सके। पर पिछले कुछ समय से हमारे यहाँ उन परिवारों की लड़कियाँ भी आ रही हैं जो समरहिल में विश्वास करते हैं। ये बेहद अच्छी लड़कियाँ हैं। उत्साही, मौलिकता लिए और पहल करने वाली।

कई बार लड़कियाँ आर्थिक कारणों से भी हटा ली जाती हैं। यह तब भी होता है जब उनके भाई किसी बेहद खर्चीले निजी स्कूल में बरकरार रहते हैं। परिवार में लड़कों को अधिक महत्व देने की परम्परा अभी भी मरी नहीं है। कुछ लड़कियाँ और लड़कों को इसलिए भी हटा लिया गया है क्योंकि माता-पिता के मन में स्वामित्व के भाव से उपजी जलन पैदा हो जाती है। उन्हें यह डर लगने लगता है कि उनके बच्चे घर के बदले स्कूल के प्रति वफादार बनने लगे हैं।

समरहिल को चलाना हमेशा से ही कुछ कठिन रहा है। ऐसे माता-पिता कम हैं जिनमें इतना धीरज या विश्वास हो कि अपने बच्चों को एक ऐसे स्कूल में भेजें जहाँ पढ़ने के विकल्प के रूप में वे खेलें। वे यह सोचकर भी थर्राते हैं कि कहीं इक्कीस का होने के बाद भी उनका बेटा गुज़ारा चलाने लायक तक न कमा पाए।

आज जितने छात्र-छात्राएँ समरहिल में हैं उनके माता-पिता उन्हें नियामक अनुशासन के बिना बढ़ने देना चाहते हैं। यह स्थिति हमारे लिए बेहद आनन्द की है। क्योंकि पहले मेरे पास कट्टर माता-पिता के बच्चे आते थे जो समरहिल को आखिरी विकल्प मान, मज़बूरी में ही अपने बच्चों को भेजते थे। उनकी बच्चों की

आज़ादी में कोई रुचि नहीं होती थी। मन ही मन वे हमें पागल ही समझते थे। ऐसे कट्टरवादियों को कुछ भी समझा पाना मुश्किल था।

मैं एक सैनिक को याद करता हूँ जिसने अपने नौ साल के बच्चे को हमारे स्कूल में दाखिला दिलाना चाहा।

“यह जगह ठीक-ठाक लगती है।” उसने कहा। “लेकिन मुझे एक डर है। मेरे लड़का यहां हस्तमैथुन सीख सकता है।”

मैंने उससे पूछा कि उसे यह डर क्यों है।

“यह उसे बहुत नुकसान पहुँचाएगा।”

“इससे मुझे या आपको तो ज़्यादा नुकसान नहीं हुआ, क्या नहीं?”

और वो तुरन्त ही अपने बच्चे के साथ वहाँ से चल दिया।

एक अमीर माँ ने मुझसे घण्टे भर सवाल किए और तब अपने पति की ओर मुड़कर बोली “मैं यह तय नहीं कर पा रही हूँ कि मार्जरी को यहाँ भेजा जाए या नहीं।”

“आप फिक्र न करें। मैंने तय कर लिया है कि हम आपकी बेटी को दाखिला नहीं देंगे।”

मुझे अपनी बात उन्हें समझानी पड़ी। “आप आज़ादी में विश्वास नहीं करतीं। अगर मार्जरी यहाँ आई तो मुझे अपनी आधी उम्र आपको यह समझाने में गुज़ारनी पड़ेगी कि आज़ादी का मतलब क्या है। पर आप फिर भी विश्वास नहीं करेंगी। मार्जरी के लिए इसके घातक परिणाम होंगे। उसके सामने लगातार यह सवाल होगा कि सही कौन है? घर या स्कूल।”

हमारे लिए आदर्श माता-पिता दरअसल वे हैं जो खुद आकर कहते हैं, “हमारे बच्चों के लिए समरहिल ही सही है। हमें उसे कहीं और नहीं भेजना है।”

जब हमने स्कूल खोला तो हमारे सामने गम्भीर कठिनाइयाँ आईं। हम उस वक्त मध्य और उच्च वर्ग के बच्चों को ही दाखिला दे सके। क्योंकि हमें खर्चे पूरे करने थे। हमारे पीछे कोई धन्ना सेठ नहीं था। एकाध बार एक व्यक्ति ने अनाम रह हमें कठिनाइयों से उबारा। बाद में एक अभिभावक ने हमें कुछ बेहद उदार उपहार दिए - एक नई रसोई, रेडियो, हमारे कॉटेज में नया हिस्सा, एक नई वर्कशॉप। वे एक आदर्श दानदाता थे क्योंकि उन्होंने कोई शर्तें नहीं लगाईं, बदले में कुछ भी नहीं चाहा।

“समरहिल ने मेरे जिमी को वह शिक्षा दी जो मैं उसके लिए चाहता था,” जेम्स शेन्ड ने कहा। वह बच्चों की आज़ादी में सच्चा विश्वास रखते थे।

पर सच में गरीब बच्चों को हम कभी दाखिल नहीं कर पाए। हमें इसका बेहद

अफसोस है। क्योंकि इस कारण हमारा अध्ययन मध्यवर्गीय बच्चों तक सिमट गया। कई बार बच्चों की सहज प्रकृति इसलिए नज़र नहीं आती क्योंकि वह पैसे और महँगे कपड़ों के पीछे छुप जाती है। जब किसी लड़की को यह पता हो कि इक्कीस साल की उम्र में वह लखपति बनने वाली है तो उसकी बाल-प्रकृति का अध्ययन करना कठिन बन जाता है। हमारा सौभाग्य रहा कि समरहिल के वर्तमान और पूर्व छात्र-छात्राएँ अमीरी से बिगड़े नहीं। उनमें से हरेक को यह पता रहा कि स्कूल से निकलने के बाद उन्हें अपनी रोज़ी-रोटी खुद कमाना है।

समरहिल में कुछ सेविकाएँ हैं जो शहर से आती हैं। वे दिन भर काम करती हैं और रात को अपने घर लौटती हैं। वे नौजवान लड़कियाँ हैं जो खूब मेहनत करती हैं, अच्छा काम करती हैं। ऐसे वातावरण में जहाँ उन पर कोई हुकम नहीं चलाता, वे अधिक मेहनत करती हैं, बेहतर काम करती हैं। वे हर अर्थ में बेहतरीन लड़कियाँ हैं। मुझे हमेशा इस बात से शर्म आती रही कि उन्हें इसलिए इतनी कठोर मेहनत करनी पड़ती है क्योंकि वे गरीब हैं। और मेरे पास बिगड़ैल अमीरजादियाँ हैं, जिनमें अपना बिस्तर तक समेटने की ऊर्जा नहीं है। पर ईमानदारी इसी में है कि मैं यह बता दूँ कि बिस्तर समेटना मुझे भी बेहद नापसन्द था। मेरा बहाना हमेशा यह रहता कि मुझे ढेरों काम करने पड़ते हैं, पर बच्चे इससे सन्तुष्ट नहीं होते। वे मेरे इस उदाहरण तक का माखौल उड़ाते कि किसी सेना नायक से कूड़ा उठाने की उम्मीद तो नहीं रखी जा सकती है न।

मैं कई बार कह चुका हूँ कि समरहिल के वयस्क नैतिकता की मिसाल नहीं थे। हम भी दूसरों की तरह इन्सान थे और कई बार हमारी इन्सानी कमज़ोरियाँ हमारे सिद्धान्तों के आड़े आती थीं। सामान्य घरों में अगर बच्चा एक प्लेट तोड़े तो माँ या पिता शोर करते हैं। उस पल अचानक प्लेट बच्चे से अधिक महत्वपूर्ण बन जाती है। समरहिल में अगर कोई बच्चा या कोई परिचारिका प्लेटों की एक ढेरी गिरा देती है, तो मैं या मेरी पत्नी कुछ नहीं कहते। दुर्घटनाएँ तो होती ही हैं। पर अगर कोई बच्चा एक किताब लेता है और उसे बरसात में बाहर छोड़ आता है तो मेरी पत्नी शोर करती है। इसलिए क्योंकि उसकी नज़र में किताबें महत्वपूर्ण हैं। पर मैं तटस्थ रहता हूँ। मेरे लिए किताबों की इतनी अहमियत नहीं है। पर जब मैं एक छेनी टूटी पाता हूँ और शोर करता हूँ तो मेरी पत्नी को आश्चर्य होता है। मेरे लिए सभी औज़ार महत्वपूर्ण हैं, पर मेरी पत्नी के लिए नहीं।

समरहिल में हमें अपना पूरा समय देना पड़ता है। पर सच्चाई यह है कि बच्चों से कहीं ज़्यादा मेहमान हमें थकाते हैं। सम्भव है कि पाने से देना कहीं बेहतर काम हो, पर वह बेहद थकाने वाला भी है।

शनिवार की रात स्कूल की आमसभा में बच्चों और वयस्कों का टकराव उभरता है।

यह स्वाभाविक भी है। क्योंकि अगर आपका समुदाय मिश्रित उम्र के लोगों का है और वहाँ बच्चों के नाम पर अगर सभी लोग सब कुछ त्यागते जाएँगे तो बच्चे पूरी तरह बिगड़ैल बन जाएँगे। बैठक में हम बड़े शिकायतें करते हैं कि सबके सो जाने के बाद बड़े बच्चों का झुण्ड इतना हँसी मज़ाक करता है कि वे सो नहीं सकते। हैरी शिकायत करता है कि घण्टे भर उसने बाहरी दरवाज़े के लिए एक पैनल की योजना बनाई, तब खाना खाने गया। लौटने पर उसने पाया कि उसकी लकड़ी से बिली ने शैल्फ बना डाली है। मैं उन लड़कों की शिकायत करता हूँ जो मुझसे सोल्डर करने के उपकरण माँगकर ले गए पर लौटाना भूल गए। मेरी पत्नी कहती है कि तीन छोटे बच्चे एक रात भूखे होने के कारण उससे डबलरोटी और जैम माँगकर ले गए। पर अगली सुबह डबलरोटी के टुकड़े बाहर पड़े मिले। पीटर दुखी होते हुए बताता है कि पॉटरी कक्ष में बच्चों के एक झुण्ड ने उसकी बेशकीमती चिकनी मिट्टी एक दूसरे पर फेंकी। वयस्कों के नज़रिए और बच्चों में चेतना के अभाव के बीच लगातार खींचतान चलती रहती है। पर यह लड़ाई कभी व्यक्तियों के स्तर पर नहीं उतरती। किसी एक के प्रति कड़ुवाहट नहीं पैदा होती। यह टकराव समरहिल को हमेशा चौकन्ना बनाए रखता है। उसे ज़िन्दा रखता है। साल भर कुछ न कुछ ज़रूर होता है। कोई दिन उबाऊ नहीं रहता।

सौभाग्य से हम शिक्षकों में स्वामित्व की भावना नहीं है। फिर भी मुझे मानना पड़ेगा कि जब मैं कोई महँगा और खास रंग खरीदकर लाता हूँ और पाता हूँ कि कोई लड़की उसे खाट को रंगने के लिए ले गई है तो मुझे तकलीफ होती है। अपनी गाड़ी, अपने टाइपराइटर, अपने वर्कशॉप के औज़ारों को लेकर मेरे में निजता की भावना है। पर लोगों को लेकर नहीं। अगर आप लोगों के प्रति स्वामित्व भाव रखते हैं तो आपको स्कूल में नहीं पढ़ाना चाहिए।

समरहिल में सामग्री की टूट-फूट एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। इसे केवल भय द्वारा ही रोका जा सकता है। पर मानसिक शक्ति की टूट-फूट किसी तरह रोकी नहीं जा सकती। बच्चे समय माँगते हैं, और वह उन्हें देना ही पड़ता है। दिन में पचासों बार मेरे कमरे का दरवाज़ा खुलता है और कोई बच्चा सवाल पूछता है: “क्या आज फिल्म देखने की रात है?” “मुझे निजी पाठ क्यों नहीं दिए जाते?” “आपने पैम को देखा है?” “ईना कहाँ है?” यह सब मेरे काम का हिस्सा है और मुझे उस समय इसका कोई दबाव महसूस नहीं होता। यद्यपि इसका मतलब यह है कि हमारी कोई निजी ज़िन्दगी नहीं होती। इसका कारण यह भी है कि हमारा भवन स्कूल के लिए उपयुक्त नहीं है। यह मैं वयस्कों के नज़रिए से कह रहा हूँ। बच्चे हमेशा हमारे ऊपर रहते हैं। सत्र के समापन तक मैं और मेरी पत्नी परत हो जाते हैं।

समरहिल की एक खासियत यह भी है कि हमारे शिक्षक गुस्सा नहीं होते। यह

शिक्षकों के साथ-साथ बच्चों के बारे में भी बहुत कुछ बताता है। सच में हमारे बच्चे बेहद अच्छे हैं। उनके साथ रहने में मज़ा आता है। नाराज़ होने के मौके कम आते हैं। अगर बच्चा खुद को पसन्द करता है तो सामान्यतः वह नफरत से भरा नहीं होता। उसे किसी वयस्क को जानबूझ कर, उकसा कर नाराज़ करने में कोई मज़ा नहीं आता।

हमारी एक शिक्षिका आलोचना झेल नहीं पाती थी। उन्हें लड़कियाँ बेहद सताती रहीं। वे दूसरे शिक्षकों को इसलिए नहीं चिढ़ा सकी क्योंकि वे कोई प्रतिक्रिया ही नहीं करते थे। आप केवल उन लोगों को ही छेड़ सकते हैं जो प्रतिष्ठा की भावना से भरे हों।

क्या समरहिल के बच्चों में भी साधारण बच्चों की तरह आक्रामक भावनाएँ दिखती हैं? सच्चाई यह है कि ज़िन्दगी में अपनी राह बनाने के लिए हरेक बच्चे में कुछ आक्रामकता होना ज़रूरी है। पर आज़ादीहीन बच्चों में जो बढ़ी-चढ़ी आक्रामकता होती है वह उस नफरत के विरोध का नतीजा है जो उसकी ओर दिखाई जाती है। समरहिल में जहाँ किसी बच्चे को यह नहीं लगता कि वयस्क उससे घृणा करते हैं, आक्रामकता की ज़रूरत भी नहीं रहती। जो बच्चे हमारे यहाँ आक्रामक हैं वे इसलिए ऐसे हैं क्योंकि उन्हें घर में प्यार और समझ नहीं मिलती।

जब मैं एक ग्रामीण स्कूल का छात्र था तो तकरीबन हर सप्ताह ही कोई ऐसी घटना होती थी जिसमें किसी की नाक से खून निकल आए। जो आक्रामकता लड़ाई पर आमामादा कर दे, वह नफरत ही तो है। जो बच्चे घृणा से भरे हैं, वे लड़ते ही हैं। जब बच्चों को घृणाहीन वातावरण मिलता है तो वे घृणा दर्शाना भी बन्द कर देते हैं।

फ्रॉयड ने आक्रामकता पर जो बल दिया है वह घरों और स्कूलों की *वास्तविकता* के कारण ही दिया था। आप अगर कुत्तों के मनोविज्ञान का अध्ययन करना चाहें तो उसे जंजीरों से बाँधे रखकर नहीं कर सकते। इसी तरह अगर आपको मानव मनोविज्ञान के सिद्धान्तों पर कुछ कहना हो तो आप पीढ़ी दर पीढ़ी ज़िन्दगी से नफरत भरे बन्धनों में जकड़े मानव के आधार पर क्या कह सकेंगे? मैं समरहिल की आज़ादी के वातावरण में उतनी आक्रामकता नहीं पाता जितनी कठोर अनुशासन वाले स्कूलों में नज़र आती है।

समरहिल की आज़ादी का मतलब सहजबुद्धि को तिलांजलि देना नहीं है। यहाँ बच्चों की सुरक्षा की हर समय सावधानी बरती जाती है। बच्चे केवल उस समय तैर सकते हैं जब हर छह बच्चों पर एक रक्षक मौजूद हो। ग्यारह साल से कम उम्र का कोई बच्चा सड़कों पर अकेला साइकिल नहीं चला सकता। ये सारे नियम बच्चों की ओर से ही सुझाए जाते हैं और हमारी आम सभा में इन पर मतदान होता है।

पर पेड़ों पर चढ़ने के बारे में कोई नियम नहीं है। उन पर चढ़ना जीवन-शिक्षा का

हिस्सा है। और फिर अगर उन सभी गतिविधियों को रोक दिया जाए जो खतरनाक हो सकती हैं तो बच्चे पूरी तरह से डरपोक नहीं बन जाएँगे? परंतु छतों पर चढ़ने पर पाबन्दी है। एयर-गन या दूसरे हथियारों, जिनसे कोई घायल हो सकता है, पर पाबन्दी है। जब कभी लकड़ी से बनी तलवारों की झक चढ़ती है तो मुझे बेहद चिन्ता होती है। मैं तब इस बात पर बल देता हूँ कि उन तलवारों की नोकों पर रबर या कपड़ा लगाया जाए। और जब यह झक उतरती है तो मुझे बेहद खुशी होती है। सच तो यह है कि सावधानी और चिन्ता में फर्क करना हमेशा आसान भी नहीं होता।

मेरे कभी पसन्दीदा छात्र-छात्राएँ नहीं रहे। ज़ाहिर है कि मुझे हमेशा ही कुछ बच्चे दूसरों से अधिक अच्छे लगते हैं, पर यह बात मैंने कभी उजागर नहीं की। शायद समरहिल की सफलता का एक राज़ यह है कि यहाँ सभी बच्चों से समान व्यवहार किया जाता है, सबको सम्मान दिया जाता है। स्कूल में छात्र-छात्राओं के प्रति अनावश्यक भावनात्मक दृष्टिकोण से मुझे डर लगता है। अपनी बतखों को हंस मान लेना या जो बच्चा रंगों से खिलवाड़ करे उसमें भावी पिकासो तलाशना बड़ा आसान भी तो है।

जितने भी स्कूलों में मैंने पढ़ाया है वहाँ शिक्षक-कक्ष षड़यंत्र, घृणा और जलन से भरा नर्क था। हमारा शिक्षक-कक्ष एक खुशनुमा कमरा है। दूसरी जगहों पर नज़र आने वाला दुर्भाव यहाँ नामौजूद है। आज्ञादी के वातावरण में वयस्कों को भी वही खुशी और सदभाव मिलता है जो छात्र-छात्राओं को मिलता है। कई बार नए शिक्षकों की आज्ञादी के प्रति वही प्रतिक्रिया होती है जो बच्चों की होती है। वे बिना दाढ़ी बनाए घूमते हैं, सुबह अलसाते रह जाते हैं। यहाँ तक कि वे स्कूल के नियम भी तोड़ते हैं। सौभाग्य से अपनी कुण्ठाओं से निपटने में वयस्कों को बच्चों की तुलना में कम समय लगता है।

हर दूसरे इतवार को मैं छोटे बच्चों को उन्हीं के साहसिक कारनामों की कहानियाँ सुनाता हूँ। यह मैं सालों-साल करता आया हूँ। मैं उन्हें अफ्रीका के दुर्गम इलाकों में, समुद्र की गहराइयों में, बादलों के ऊपर ले गया हूँ। कुछ समय पहले एक किस्से में मैं खुद को मार चुका हूँ। समरहिल पर मगिन्स नाम के एक कठोर शख्स का कब्ज़ा हो चुका है। उसने पढ़ाई को अनिवार्य बना दिया। अगर मुँह से गाली का 'ग' भी निकलता तो समरहिल के बच्चों को बेंत से ठोंका जाता। मैंने बच्चों को चुपचाप मगिन्स का हुक्म बजाने की कल्पना की।

तीन से आठ साल के वे नन्हे मुझसे नाराज़ हो गए। "कोई हुक्म नहीं माना हमने। हम सब तो भाग गए थे। हमने हथौड़े से मगिन्स को मार डाला। क्या सोच रखा है तुमने? हम भला ऐसे आदमी को झेल सकते हैं?"

उन्हें तब चैन आया जब मैं वापस ज़िन्दा हुआ और मगिन्स महोदय को दरवाज़े

के बाहर किया। कहानी सुनने वाले ज़्यादातर वे छोटे बच्चे थे जिनका किसी कठोर स्कूल से परिचय तक न था। उनका गुस्सा स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी। ऐसी दुनिया जहाँ शिक्षक उनके पक्ष में न हो वे उसकी कल्पना तक न कर सकते थे। न केवल समरहिल के अनुभव के कारण, बल्कि इसलिए भी कि उनके पारिवारिक अनुभव में भी उनके माँ-बाप उनके पक्ष में थे।

एक अमरीकी मनोविज्ञान के प्रोफेसर ने हमारे स्कूल की आलोचना यह कहते हुए की कि यह एक द्वीप है और समुदाय के मुनासिब नहीं है। अर्थात् वह एक बड़ी सामाजिक इकाई का हिस्सा नहीं है। मेरा जवाब है: अगर मैं किसी छोटे शहर में स्कूल खोलूँ और उसे समुदाय का हिस्सा बनाना चाहूँ तो क्या होगा? सौ अभिभावकों में कितने अभिभावक ऐसे होंगे जो कक्षा में उपस्थित होने के बारे में बच्चों की मर्ज़ी की बात मान सकेंगे? कितने लोग बच्चों के हस्तमैथुन के हक को अनुमोदित करेंगे? ऐसे में मुझे शुरु से ही अपनी आस्थाओं से समझौता करना पड़ेगा।

समरहिल *यकीनन* एक द्वीप है। क्योंकि यहाँ पढ़ने वाले बच्चों के अभिभावक मीलों दूर बसे शहरों और कस्बों में या फिर विदेशों में रहते हैं। उन सबको लाइस्टन में इकट्ठा करना सम्भव नहीं है। सो समरहिल को लाइस्टन के सांस्कृतिक, आर्थिक और सामाजिक जीवन का हिस्सा भी नहीं बनाया जा सकता।

यहाँ मैं यह ज़रूर जोड़ दूँ कि लाइस्टन से हम कटे हुए नहीं हैं। स्थानीय लोगों से हमारा सम्पर्क है। हमारे आपसी रिश्ते दोस्ताना हैं। इसके बावजूद हम मूल रूप से स्थानीय समुदाय का हिस्सा नहीं हैं। मुझे कभी यह ख्याल तक नहीं आएगा कि मैं स्थानीय अखबार के सम्पादक को कहूँ कि वे मेरे पुराने छात्र-छात्राओं की सफलता की कहानियाँ छापें।

शहर के स्कूली बच्चों के साथ हम खेलते ज़रूर हैं पर हमारे शैक्षणिक लक्ष्य अलग-अलग हैं। धार्मिक आस्थाओं से जुड़ाव न होने के कारण हम शहर की किसी स्थानीय धार्मिक संस्था से भी नहीं जुड़े हैं। अगर समरहिल को हम स्थानीय समुदाय का हिस्सा बनाना चाहें तो हमें अपने छात्र-छात्राओं को धार्मिक शिक्षा देनी होगी।

मुझे लगता है कि हमारे अमरीकी मित्र को यह पता ही नहीं था कि उनकी आलोचना का दरअसल क्या अर्थ है। शायद वे कहना चाहते थे कि नील केवल समाज विद्रोही है। उसकी शिक्षा दुनिया को एक सामंजस्यपूर्ण इकाई में नहीं बदल सकेगी। बाल-मनोविज्ञान और उसके बारे में समाज की अज्ञानता, जीवन समर्थक और जीवन विरोधी तत्वों के बीच, स्कूल और घर के बीच जो फासले हैं, उसे यह पद्धति पाट नहीं सकती। इसका जवाब यह है कि मैं कोई सक्रिय धर्म-प्रचारक या

समाज सुधारक नहीं हूँ। मैं तो समाज को यह बताने की कोशिश ही कर सकता हूँ कि वह अपनी जड़ों में जमी बैठी नफरत की भावना को, अपनी सज़ा को, अपने रहस्यवाद को हटाए। मैं समाज के बारे में जो कुछ सोचता हूँ वह मैं लिखता भी हूँ। पर अगर मैं समाज सुधारने का कदम उठाता हूँ तो मुझे एक सार्वजनिक खतरा मानकर खत्म कर डाला जाएगा।

उदाहरण के लिए यदि मैं एक ऐसे समाज का निर्माण करने की कोशिश करता हूँ जिसमें किशोरों को प्यार दर्शाने और सम्भोग की आज़ादी हो तो मैं बरबाद हो जाता या फिर उन्हें बिगाड़ने के जुल्म में जेल में डाल दिया जाता। समझौते मुझे नापसन्द हैं, फिर भी मैंने समझौता किया है। क्योंकि मैं यह समझता हूँ कि मेरा मुख्य काम समाज सुधारने का नहीं है, बल्कि कुछ बच्चों के जीवन को आनन्ददायक बनाने का है।

समरहिल की शिक्षा बनाम मानक शिक्षा

मेरा मानना है कि जीवन का लक्ष्य है आनन्द हासिल करना। इसका अर्थ है अपनी वास्तविक रुचि को तलाश पाना। शिक्षा जीवन की तैयारी होनी चाहिए। हमारी संस्कृति बहुत सफल नहीं रही है। हमारी शिक्षा, राजनीति और अर्थव्यवस्था युद्ध की ओर ले जाती है। हमारी औषधियों से रोग समाप्त नहीं हुआ है। हमारे धर्म ने सूदखोरी और चोरी खत्म नहीं की है। जिस मानवतावाद का हम इतना बखान करते हैं वह आज भी आम जनता को शिकार जैसे बर्बर खेल की स्वीकृति देता है। हमारी प्रगति दरअसल मशीनीकरण की दिशा में प्रगति है। वह प्रगति रेडियो, टी.वी., इलैक्ट्रॉनिक्स और जेट विमानों की प्रगति है। आए दिन एक नए विश्व युद्ध का खतरा हमारे सिर पर मँडराता है। यह सब इसलिए होता है क्योंकि हमारी विश्व चेतना अभी भी आदिम है।

अगर आज हम सवाल उठाना चाहें तो कुछ अटपटे सवाल खड़े कर सकते हैं। हम पूछ सकते हैं कि ऐसा क्यों लगता है कि पशुओं की तुलना में, इन्सानों में रोग अधिक होते हैं? आदमी लड़ाई के दौरान इतनी घृणा और हत्या क्यों करता है, जबकि पशु ऐसा नहीं करते? कैंसर का रोग बढ़ क्यों रहा है? आत्महत्या की वारदातें क्यों बढ़ती जा रही हैं? इतने वहशी यौन-अपराध क्यों होते हैं? यहूदियों के प्रति इतनी घृणा क्यों है? किसी काले व्यक्ति को, घृणा से उद्देलित भीड़ क्यों मार डालती है? एक दूसरे के लिए कड़वी बातें, एक दूसरे की बुराई क्यों की जाती है? सम्भोग को अश्लील और भदा मज़ाक क्यों समझा जाता है? अवैध सन्तान को

सामाजिक कलंक क्यों माना जाता है? ऐसे धर्म, जो अपना प्रेम, आशा और उदारता खो चुके हैं आज भी क्यों प्रचलित हैं? ख्याति के उच्चतम शिखरों पर पहुँची हमारी सभ्यता को लेकर ऐसे हज़ारों 'क्यों' हमारे सामने हैं।

लगातार मैं ये तमाम सवाल इसलिए उठा रहा हूँ क्योंकि मेरा पेशा शिक्षक का है। ऐसा शिक्षक जिसका वास्ता किशोर-किशोरियों से है। मैं ये सवाल इसलिए उठा रहा हूँ क्योंकि अक्सर शिक्षक जो सवाल उठाते हैं वे गैर-महत्वपूर्ण हैं, स्कूलों में पढ़ाए जाने वाले विषयों के सम्बंध में हैं। मैं पूछता हूँ कि जीवन के स्वाभाविक लक्ष्य - व्यक्ति की आन्तरिक शान्ति - के अहम सवाल की तुलना में फ्रेंच, प्राचीन इतिहास, या किसी भी विषय पर चर्चा का क्या अर्थ हो सकता है?

हमारी शिक्षा का कितना भाग वास्तविक रूप से कुछ करने या वास्तविक आत्म अभिव्यक्ति का है? हमारी हस्तकला का मतलब किसी विशेषज्ञ के निर्देशन में एक पिन ट्रे बनाना भर रह जाता है। निर्देशों के साथ खेल की विश्वविख्यात मॉन्टेसरी पद्धति भी, कुछ करते हुए सीखने का एक निहायत कृत्रिम तरीका है। उसमें मुझे कुछ भी रचनात्मक नज़र नहीं आता है।

घर में बच्चे को हमेशा सिखाया जाता है। हरेक घर में एक ऐसा 'बचकाना' वयस्क ज़रूर होता है जो खेलते टॉमी को अपने इंजन की क्रियाविधि समझाने को हमेशा तत्पर रहता है। अगर नहीं दीवार पर टँगी कोई चीज़ देखना चाहे, तो कोई न कोई उसे कुर्सी पर खड़ा करने वाला भी मौजूद होता है। जब-जब हम टॉमी को उसके इंजन के बारे में बताते हैं तो दरअसल हम उससे जीवन का आनन्द छीनते हैं। खोज का आनन्द, एक बाधा पार करने का आनन्द। यही नहीं हम उसे विश्वास दिलाते हैं कि वह बड़ा आश्रित है, हीन है। उसे दूसरों पर निर्भर होना चाहिए।

अभिभावक दरअसल यह बात बड़ी देर से समझते हैं कि स्कूल में सीखने-सिखाने का पक्ष कितना बेमानी है। वयस्कों की तरह बच्चे भी वही सीखते हैं जो वे दरअसल सीखना चाहते हैं। सारे इनाम, अंक और परीक्षाएँ उचित व्यक्तित्व विकास से बच्चे को बहुत दूर ले जाते हैं। केवल पण्डिताऊ लोग ही यह दावा करते हैं कि किताबी शिक्षा, असल शिक्षा है।

किताबें स्कूल का सबसे कम ज़रूरी उपकरण हैं। बच्चों के लिए पढ़ना, लिखना, हिसाब करना ज़रूरी है। उसके बाद केवल औज़ार, मिट्टी, खेल-कूद, नाटक, रंग और आज़ादी ही होनी चाहिए।

स्कूलों में किशोर-किशोरियों द्वारा की गई लिखाई-पढ़ाई दरअसल ऊर्जा, समय और धीरज की बरबादी है। वह बच्चों से खेलने का अधिकार छीनता है। किशोर कन्धों पर बुढ़ापा लादता है।

मैं जब कभी कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में शिक्षक प्रशिक्षण ले रहे शिक्षार्थियों को भाषण देने जाता हूँ तो निरर्थक ज्ञान से भरे इन शिक्षार्थियों में बड़े होने के भाव की कमी को देख भौंचक्का रह जाता हूँ। वे बहुत कुछ जानते हैं। उनकी अभिव्यक्ति व तर्कशक्ति अच्छी होती है। वे तमाम पोथों को उद्धृत करते हैं। पर जीवन के प्रति उनका नज़रिया बच्चों जैसा होता है। क्योंकि उन्हें हमेशा सिर्फ़ *जानना* सिखाया गया है *महसूस करना* नहीं। उनका अंदाज़ दोस्ताना होता है, वे मनोहर और उत्साही होते हैं। फिर भी उनमें कुछ कमी-सी लगती है। यह है भावनात्मकता की कमी। उनमें विचारों को अहसास के स्तर पर उतारने की क्षमता नहीं होती। मैं उन्हें उस दुनिया की बात बताता हूँ जो उन्होंने कभी देखी तक नहीं है। उनकी पाठ्यपुस्तकों में मानव चरित्र का, या प्रेम का, आज़ादी का या तय करने की स्वतंत्रता का उल्लेख नहीं होता। यह परिपाटी यँ ही आगे चलती जाती है। किताबें ज्ञान के स्तरों को पा लेने के लक्ष्य की बैसाखियाँ हैं। पर वे दिल और दिमाग को लगातार अलग रखती हैं।

वह समय आ चुका है जब हम काम की स्कूली धारणा को चुनौती दें। अमूमन यह मानकर चला जाता है कि हरेक बच्चे को गणित, इतिहास, भूगोल, थोड़ा सा विज्ञान, कुछ कला और निश्चित रूप से साहित्य सीखना ज़रूरी है। पर वास्तव में एक औसत बच्चे की इन विषयों में कोई रुचि नहीं होती। यह समझ लेने का समय भी आ चुका है।

यह बात मैं हर नए छात्र, नई छात्रा के साथ सिद्ध करता हूँ। जब उन्हें बताया जाता है कि समरहिल मुक्त शाला है तो वे चीखकर कहते हैं, “हुर्रा। क्या बात है। मुझे आप गणित और दूसरी उबाऊ चीज़ें नहीं सिखाएँगे।”

मैं ज्ञान का माखौल नहीं उड़ा रहा। इतना भर कह रहा हूँ कि पढ़ाई-लिखाई, खेल के बाद आनी चाहिए। और उसे जानबूझकर खेल के साथ नहीं परोसा जाना चाहिए ताकि वह भी स्वादिष्ट लगे।

ज्ञान महत्वपूर्ण है, पर सबके लिए नहीं। निजिंस्की सेंट पीटर्सबर्ग में अपनी स्कूली परीक्षाएँ पास नहीं कर सका। परीक्षाएँ पास किए बिना उसे राजकीय बैले नृत्यशाला में दाखिला नहीं दिया गया। वह स्कूली विषय सीख ही नहीं सकता था, उसका ध्यान तो कहीं और था। उसकी आत्मकथा के लेखक ने बताया कि उसकी नकली परीक्षा ली गई। प्रश्न पत्र के साथ उसे सवालों के जवाब भी दिए गए। अगर निजिंस्की इन इम्तहानों में पास नहीं होता तो दुनिया को कितना बड़ा नुकसान होता।

जो रचनाकार होते हैं, वे जो कुछ सीखना चाहते हैं वह सिर्फ़ इसलिए ताकि वे उन औज़ारों को हासिल कर सकें जो उनकी मौलिकता और प्रतिभा के लिए ज़रूरी हैं। हमें शायद इस बात का अंदाज़ ही नहीं है कि स्कूली कक्षाओं में सीखने पर बल देने पर कितनी रचनात्मकता कुचली जाती है।

मैंने एक लड़की को हर रात ज्यामिति को लेकर रोते देखा है। वह चाहती थी कि वह विश्वविद्यालय में दाखिला ले। पर इस लड़की की आत्मा कलाकार की थी। जब मैंने सुना कि वह सातवीं बार भी दाखिले की परीक्षा में असफल हो गई है, तो मुझे खुशी हुई। इसलिए कि शायद अब उसकी माँ उसे रंगमंच में जाने देगी, जहाँ वह हमेशा से जाना चाहती थी।

कुछ समय पहले मुझे कॉपेनहेगन में एक चौदह साल की लड़की मिली जिसने तीन साल समरहिल में बिताए थे। यहाँ वह अँग्रेज़ी बोलती थी। मैंने पूछा, “तो तुम अँग्रेज़ी में अपनी कक्षा में अक्वल रहती होगी।”

उसने मुँह बिगाड़ा, “ना मैं सबसे नीचे हूँ क्योंकि मुझे अँग्रेज़ी व्याकरण नहीं आता।” वयस्क किसे शिक्षा समझते हैं, उस पर यह एक उम्दा टिप्पणी है।

ठीक-ठाक छात्र-छात्राएँ अनुशासन के डण्डे के ज़ोर पर कॉलेजों और विश्वविद्यालयों से किसी तरह निकलकर आखिर कल्पनाहीन शिक्षक, साधारण चिकित्सक, अदक्ष वकील ही तो बनते हैं। पूरी सम्भावना यह है कि वे शायद बेहतरीन मैकेनिक, चिनाई करने वाले या अच्छे पुलिस वाले बनते।

हमने पाया कि जो लड़का तकरीबन पन्द्रह साल की उम्र तक ढंग से पढ़ना सीख नहीं पाता, या सीखना नहीं चाहता, उसका रुझान हमेशा मशीनों की ओर होता है। वह बाद में उम्दा इंजीनियर या बिजली मिस्त्री बनता है। मैं उन लड़कियों के बारे में ऐसा कोई सिद्धान्त देने की हिम्मत नहीं कर सकता जो कक्षाओं में, खासकर गणित या भौतिकशास्त्र की कक्षाओं में, नहीं जाती। अक्सर ये लड़कियाँ अपना ज़्यादातर समय सिलाई-कढ़ाई में बिताती हैं। बाद में कपड़े बनाने या डिज़ाइन करने के काम से जुड़ती हैं। वह पाठ्यक्रम बेवकूफी भरा होगा जो इन बच्चियों को चतुष्कोणीय समीकरण या बॉयल का सिद्धान्त पढ़ाता है।

कैल्डवेल कुक ने *द प्ले वे* शीर्षक से एक किताब लिखी थी। पुस्तक में खेल-खेल में अँग्रेज़ी भाषा सिखाने की उनकी विधि बताई गई है। किताब बेहद सम्मोहक है। उसमें तमाम बेहतरीन चीज़ें हैं। फिर भी मुझे लगता है कि यह उसी सिद्धान्त पर बल देती है कि सीखना सबसे महत्वपूर्ण है। कुक का मानना था कि सीखना इतना ज़रूरी है कि इस कड़वी दवा को खेल की चीनी से लपेटकर दिया जाना चाहिए। यह धारणा कि अगर बच्चा कुछ सीख नहीं रहा तो वह अपना समय बर्बाद कर रहा है एक भारी अभिशाप है। यह अभिशाप हज़ारों शिक्षकों और अधिकांश स्कूल निरीक्षकों को अंधा बना देता है। पचास साल पहले का नारा था ‘करके सीखो’। आज का नारा है ‘खेल-खेल में सीखो’। यहाँ भी खेल एक लक्ष्य तक पहुँचने का माध्यम भर है। पर वह लक्ष्य क्या है यह मुझे अब तक समझ नहीं आया।

अगर शिक्षक बच्चों को मिट्टी में खेलता पाता है और उस पल को और यादगार बनाने के उद्देश्य से वह उन्हें नदी तट में भूक्षरण की बात बताने लगता है तो उसका उद्देश्य क्या होता है? बच्चों को भूक्षरण से क्या लेना-देना? कई शिक्षाविदों का विश्वास है कि बच्चा क्या सीखता है दरअसल इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। ज़रूरी सिर्फ़ इतना भर है कि उन्हें कुछ न कुछ *सिखाया* जाए। स्कूलों में (जैसे कि स्कूल आज के हालात में हैं - बड़े पैमाने पर उत्पादन करने वाले कारखानों समान) शिक्षक और कर ही क्या सकते हैं? वे कुछ न कुछ सिखाते जाते हैं और यही यकीन कर लेते हैं कि सिखाना अपने आप में सबसे महत्वपूर्ण काम है?

जब शिक्षकों को भाषण देता हूँ तो अपनी बात यह कहकर शुरू करता हूँ कि मैं पढ़ाए जाने वाले विषयों, अनुशासन या कक्षाओं पर कुछ नहीं बोलूँगा। तकरीबन एक घण्टे तक श्रोतागण पूरे ध्यान से मुझे सुनते हैं। ईमानदारी से तालियाँ बजाते हैं। तब अध्यक्ष प्रश्नोत्तर सत्र की घोषणा करते हैं। तब पाता हूँ कि तीन-चौथाई सवाल विषयों और पढ़ने के तौर-तरीकों से जुड़े हैं।

यह बात मैं दम्भ से नहीं कर रहा। मैं दुख के साथ कहता हूँ कि कक्षाओं की दीवारें और जेलनुमा स्कूल भवन शिक्षकों के नज़रिए को कितना संकुचित कर देते हैं। शिक्षा के वास्तविक तत्वों को वे देख तक नहीं पाते। शिक्षक का समूचा काम बच्चे की गर्दन से ऊपर वाले हिस्से के साथ होता है। ऐसे में बच्चे का भावनात्मक पक्ष जो उसका सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा है, शिक्षक के लिए अनजाना रह जाता है।

मेरी तमन्ना है कि मैं युवा शिक्षकों में एक व्यापक आन्दोलन देख सकूँ। उच्च शिक्षा और विश्वविद्यालयों की डिग्रियाँ दरअसल सामाजिक बुराइयों का सामना कर पाने की क्षमता में रत्ती भर असर नहीं करतीं। एक पढ़े-लिखे मनोरोगी और अशिक्षित मनोरोगी में कोई फर्क नहीं है।

सभी देशों में, फिर चाहे वे पूँजीवादी, समाजवादी या साम्यवादी हों, बच्चों को शिक्षित करने के लिए भारी भरकम योजनाएँ बनाई जाती हैं, स्कूल खोले जाते हैं। ये उम्दा प्रयोगशालाएँ और कार्यशालाएँ किसी जॉन, पीटर या ईवान को पहुँची भावनात्मक ठेस को दूर करने में कतई मददगार नहीं होतीं। भावनात्मक क्षति, बच्चे के अभिभावक, शिक्षक और हमारी सभ्यता के दमनकारी रूप के कारण, बच्चे पर लगातार दबाव डालने से पहुँचती है।

समरहिल से निकले बच्चों की क्या स्थिति रहती है?

भविष्य को लेकर माता-पिता के मन में बसा डर उनके बच्चों के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। यह भय इस इच्छा के रूप में झलकता है कि उनका बेटा/बेटी उनसे कहीं ज़्यादा पढ़े। इस तरह का कोई पिता अपने बेटे को अपनी रफ़्तार से पढ़ना-लिखना सीखने नहीं देता। उसे डर रहता है कि अगर उसने दबाव नहीं बनाया तो विली असफल हो जाएगा। ऐसे माता-पिता अपने बच्चों को उनकी गति से बढ़ने नहीं देते। वे सवाल करते हैं कि अगर मेरे बेटे या बेटी ने बारह साल की उम्र तक पढ़ना नहीं सीखा है तो जीवन में सफल होने की उसकी क्या सम्भावना है? अगर अठारह साल की उम्र में वह कॉलेज दाखिले का इम्तहान नहीं पास कर सकता तो एक अकुशल नौकरी के अलावा वह क्या करेगा? पर मैंने इन्तज़ार करना, धीरज रखना सीखा है। बच्चा अपनी रफ़्तार से आगे बढ़े या रुका रहे, मुझे कोई शक नहीं कि अगर उसे छोड़ा न जाए, उसे तोड़ा न जाए तो वह अपने जीवन में ज़रूर सफल रहेगा।

मेरे विरोधी कहेंगे, “वाह! एक ट्रक ड्राइवर बनने को भला क्या जीवन में सफल होना कहा जा सकता है?” सफलता का मेरा अपना मापदण्ड है, *खुशी-खुशी काम करने और सकारात्मक जीवन जी पाने की क्षमता*। और इस परिभाषा से चलें तो समरहिल के अधिकांश छात्र-छात्राएँ जीवन में सफल ही होते हैं।

टॉम पाँच साल की उम्र में समरहिल आया। सत्रह साल का हुआ तब उसने स्कूल छोड़ा। इस दौरान वह एक भी कक्षा में, एक भी पाठ के लिए नहीं गया। उसने ज़्यादातर समय वर्कशॉप में कुछ न कुछ बनाते बिताया। उसके माता-पिता उसके भविष्य की कल्पना कर थर्राते थे। उसने कभी पढ़ना-लिखना सीखने की इच्छा तक नहीं दर्शाई। जब वह तकरीबन नौ साल का था, मैंने उसे एक रात बिस्तर पर पसरे डेविड कॉपरफील्ड पढ़ते पाया।

“हलो!” मैंने कहा, “भई तुम्हें पढ़ना किसने सिखाया?”

“मैंने ही खुद को सिखाया!”

कुछ साल बाद वह मेरे पास यह पूछने आया, “आधा और एक बटा पाँच कैसे जोड़ते हैं?” मैंने उसे बता दिया। मैंने पूछा कि वह भिन्नों के बारे में कुछ और जानना चाहता है? तो उसका कहना था, “नहीं, धन्यवाद!”

स्कूल से निकलने के बाद उसे एक फिल्म स्टूडियो में कैमरा बॉय की नौकरी मिली। जब वह काम सीख ही रहा था कि मुझे उसके बॉस से एक डिनर पार्टी में मुलाकात करने का मौका मिला। मैंने जानना चाहा कि टॉम का काम कैसा चल रहा है।

“अब तक जितने लड़के आए, उन सबसे बढ़िया,” उन्होंने बताया। “वह चलता नहीं दौड़ता है। पर सप्ताह अन्त में वह सिरदर्द बन जाता है। शनिवार और इतवार को वह स्टूडियो से दूर रहता ही नहीं!”

एक लड़का था जैक, जो पढ़ना-लिखना सीख नहीं पा रहा था। उसे कोई सिखा भी नहीं सकता था। जब वह खुद पढ़ने का आग्रह करता तो भी नहीं। कोई अन्दरूनी बाधा थी जो उसे बी (B) और पी (P), एल (L) और के (K) अक्षरों का अन्तर समझने नहीं देती थी। सत्रह साल की उम्र में बिना पढ़ना सीखे वह स्कूल से निकला।

जैक आज औज़ार बनाने में उस्ताद है। उसे धातुकर्म की बात करना बेहद पसन्द है। वह मशीनों के बारे में लेख पढ़ता है। कभी-कभार मनोविज्ञान से सम्बंधित लेख भी पढ़ता है। मुझे नहीं लगता कि उसने कभी एक उपन्यास तक पढ़ा होगा। वह व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध अँग्रेज़ी बोलता है और उसका सामान्य ज्ञान विलक्षण है। एक अमरीकी मेहमान जो उसकी कहानी नहीं जानते थे, ने उससे मिलने पर टिप्पणी की, “यह लड़का बड़ा चतुर है।”

डायेन प्यारी-सी लड़की थी। वह कक्षाओं में खास रुचि नहीं लेती थी। विद्वता के प्रति उसका रुझान नहीं था। सोलह साल की उम्र में कोई भी विद्यालय निरीक्षक उसे पढ़ाई-लिखाई में कमज़ोर लड़की का दर्ज़ा देते। डायेन आज लन्दन में एक भिन्न तरह की पाककला के प्रदर्शन देती है। वह अपने काम में बेहद कुशल है। उससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि वह बहुत खुश है।

एक फर्म की माँग थी कि उसमें काम करने वाले सभी लोग कम से कम कॉलेज दाखिले की परीक्षा पास कर चुके हों। मैंने उसे रॉबर्ट के बारे में खत लिखा। “इस लड़के ने कोई परीक्षा पास नहीं की है। उसका रुझान विद्वता की ओर नहीं है, पर उसमें साहस है।” रॉबर्ट को नौकरी मिल सकी।

विनिफ्रेड तेरह साल की नई छात्रा है। उसने मुझे बताया कि उसे सभी विषयों से नफरत है। जब उसे पता चला कि वह जो चाहे कर सकती है, तो वह खुशी से चीख पड़ी। “तुम्हारी इच्छा न हो तो तुम्हें स्कूल जाने की भी ज़रूरत नहीं है,” मैंने कहा।

उसने तय किया कि वह मस्ती करेगी। यह उसने कुछ सप्ताह किया। मैंने देखा कि इसके बाद वह ऊबने लगी।

“मुझे कुछ तो सिखाओ,” उसने एक दिन मुझसे कहा, “मैं बेहद बोर हो रही हूँ।”
 “ठीक है,” मैंने खुशी से कहा, “तुम क्या सीखना चाहोगी?”

“पता नहीं,” उसका जवाब था।

“मुझे भी पता नहीं,” मैंने कहा, और चल दिया।

महीनों बीत गए। तब वह फिर से आई। “मैं कॉलेज में दाखिले की परीक्षा पास करना चाहती हूँ। मुझे आप पढ़ाएँ,” वह बोली।

हर सुबह वह मेरे और दूसरे शिक्षकों के साथ काम करने लगी। खूब मेहनत की। उसने बताया कि उसे विषयों में खास मज़ा नहीं आ रहा था। पर अपने लक्ष्य में उसकी रुचि थी। विनिफ्रेड स्वयं अपने लक्ष्य को तलाश पाई क्योंकि उसे यह अनुमति मिली कि वह जैसी है वैसी बनी रहे।

मज़े की बात यह है कि मुक्त बालक-बालिकाएँ गणित पसन्द करने लगते हैं। इतिहास और भूगोल में आनन्द पाते हैं। वे विभिन्न विषयों में से उन विषयों को छोट पाते हैं जो उन्हें रोचक लगे। मुक्त बच्चे अपना ज़्यादातर समय अपनी दूसरी अभिरुचियों में बिताते हैं। वे लकड़ी या धातु का काम करने, चित्रकारी करने, कहानियाँ-उपन्यास पढ़ने, अभिनय करने या अपनी कल्पनाओं को खेल में बदलने, जैज़-संगीत के रिकॉर्ड बजाने में अपना समय बिताते हैं।

आठ साल का टॉम हमेशा मेरे दरवाज़े से खेलता और पूछता, “मुझे अब क्या करना चाहिए?” पर उसे कोई यह नहीं बताता कि वह क्या करे।

छह महीने बाद अगर आप टॉम को तलाशते हुए उसके कमरे में जाते तो उसे कागज़ों के समुन्द्र में डूबा पाते। वह घण्टों नक्शे बनाने में गुज़ारता। एक बार विएना विश्वविद्यालय के एक प्रोफेसर साहब ने बताया, “मैंने उस लड़के से भूगोल पर सवाल पूछने चाहे। वह ऐसी जगहों की बात कर रहा था जिनके नाम तक मैंने नहीं सुने हैं।”

पर मुझे हमारी असफलताओं के बारे में भी बताना है। बारबेल नामक पन्द्रह वर्षीय स्वीडिश लड़की हमारे पास साल भर रही। उसे इस दौरान कोई ऐसा काम नहीं मिला जो उसे रोचक लगा हो। दरअसल वह बहुत देर से समरहिल आई। तकरीबन दस साल से उसकी शिक्षिकाएँ उसके लिए निर्णय लेती रहीं थीं। समरहिल आने तक उसकी पहल करने की ताकत सूख चुकी थी। वह ऊब गई। सौभाग्य इतना भर था कि वह अमीर परिवार की थी सो आराम की ज़िन्दगी काट सकती थी।

हमारे यहाँ यूगोस्लाविया से आई दो बहनें थीं। एक ग्यारह और दूसरी चौदह साल की। उनकी रुचि बाँधने में स्कूल असफल रहा। उन्होंने अपना ज़्यादातर समय

क्रोएशियन भाषा में मेरी आलोचना करने में लगाया। मेरे एक क्रूर मित्र हमेशा टिप्पणियों का अनुवाद कर मुझे बताते। इस स्थिति में सफलता हाथ लगती तो चमत्कार ही होता क्योंकि हमारे बीच साझी भाषा एक ही थी। वह थी कला और संगीत की। जब उनकी माँ उन्हें वापस लेने आईं तो मुझे बेहद खुशी हुई।

हमने सालों के अनुभव से पाया कि जो लड़के इंजीनियरिंग के क्षेत्र में जाते हैं, वे मैट्रिक के इम्तहान की परवाह नहीं करते। वे सीधे ही व्यावहारिक प्रशिक्षण केन्द्रों में जाना पसन्द करते हैं। विश्वविद्यालय में प्रवेश करने से पहले वे दुनिया देखना चाहते हैं। एक जहाज़ में खिदमतगार बन सारी दुनिया घूमा। दो लड़कों ने केन्या में कॉफी की खेती की। एक लड़का ऑस्ट्रेलिया गया और एक पहुँचा दूरस्थ ब्रिटिश गयाना।

डेरिक बॉयड मुक्त शिक्षा से पनपा ऐसा ही एक साहसिक व्यक्ति था। वह आठ साल की उम्र में समरहिल आया और अठारह की उम्र में विश्वविद्यालय की परीक्षा पास करने के बाद उसे छोड़ा। वह डॉक्टर बनना चाहता था पर उसके पिता आर्थिक कारणों से उसे उस वक्त पढ़ा नहीं सकते थे। उसने सोचा कि वह बीच का समय दुनिया देखने में बिताएगा। वह लंदन के बंदरगाह पर गया। दो दिन उसने नौकरी तलाशने में बिताए। उसे कोई भी नौकरी मंजूर थी। जहाज़ की भट्टी में कोयला झोंकने वाले की भी। उसे बताया गया कि वैसे ही सैकड़ों प्रशिक्षित नाविक बेरोज़गार हैं। वह काफी उदास हो घर लौटा।

कुछ ही दिनों में उसे उसके किसी साथी ने बताया कि स्पेन में रहने वाली एक अंग्रेज़ महिला को ड्राइवर चाहिए। डेरिक ने मौका लपक लिया और स्पेन चला गया। वहाँ उसने महिला का मकान बनाने और उसकी मरम्मत करने में मदद की। उसे यूरोप भी घुमाया और तब आगे की पढ़ाई करने लौटा। महिला ने उसकी फीस में सहायता करने का निर्णय लिया। दो साल बाद उस महिला ने आग्रह किया कि वह साल भर छुट्टी ले और उसके साथ केन्या जाए। वहाँ भी उसका मकान बनवा दे। डेरिक ने अपनी पढ़ाई केन्या के केपटाउन में पूरी की।

लैरी हमारे पास बारह साल की उम्र में आया, विश्वविद्यालय में दाखिले की परीक्षा देकर सोलह साल में निकला और तब ताहिती में फलों की खेती करने चला गया। उसने पाया कि इस काम में कमाई कम है तो उसने टैक्सी चलानी शुरू की। बाद में वह न्यूज़ीलैण्ड गया। वहाँ उसने तमाम काम किए, टैक्सी भी चलाई। तब ब्रिसबेन विश्वविद्यालय में दाखिला लिया। उस विश्वविद्यालय के डीन जब मिलने आए तो उन्होंने लैरी की तारीफ की। “जब छुट्टियाँ हो गईं और हमारे सब छात्र घर चले गए तो लैरी एक लकड़ी काटने की मिल में मज़दूरी करने चला गया।” आज लैरी एसेक्स में डॉक्टर है।

समरहिल के ऐसे भी पूर्व छात्र हैं जिन्होंने कोई पहल नहीं दर्शाई है। ज़ाहिर कारणों से मैं उनके बारे में लिख नहीं सकता। जहाँ-जहाँ हम सफल हुए हैं उन बच्चों की पृष्ठभूमि में अच्छे घर थे। डेरिक, जैक और लैरी के माता-पिता की स्कूल के साथ हमदर्दी थी। इसलिए इन लड़कों को थकाने वाला द्रन्द नहीं झेलना पड़ा। द्रन्द यह कि दरअसल सही कौन है - स्कूल या घर?

क्या समरहिल में कोई जीनियस हुआ है? नहीं, अब तक नहीं। कुछ रचनाकार हैं जो अब तक विख्यात नहीं हुए हैं। कुछ उम्दा कलाकार हैं। कुछ अच्छे संगीतज्ञ हैं। कोई सफल लेखक हुआ हो, ऐसा मुझे याद नहीं आता। बेहद अच्छे फर्नीचर डिज़ाइनर और लकड़ी के कारीगर हुए हैं। कुछ अभिनेत्रियाँ और अभिनेता। कुछ वैज्ञानिक और गणितज्ञ, जो भविष्य में मौलिक काम कर सकते हैं। मुझे लगता है कि हमारी संख्या के अनुपात में - जो एक साल में तकरीबन पैंतालीस रहते हैं - काफी छात्र-छात्राएँ रचनात्मक और मौलिक कामों से जुड़े हैं।

पर मैं हमेशा कहता हूँ कि आज़ाद बच्चों की एक पीढ़ी कुछ भी सिद्धान्त साबित नहीं कर सकती। समरहिल में भी बच्चों के मन में अपराधबोध घर कर जाता है। उन्हें लगता है कि वे दरअसल पढ़ाई नहीं कर रहे हैं। जिस दुनिया में परीक्षाएँ ही किसी व्यवसाय का दरवाज़ा हों वहाँ यह स्वाभाविक ही है। और फिर बच्चों के ज़रूर कोई ऐसे अंकल-आंटी भी होते ही हैं जो कहते हैं, “क्या? ग्यारह साल की उम्र में आकर भी तुम ठीक से पढ़ नहीं पाते हो?” बच्चों में इस बात की अस्पष्ट-सी समझ बनने लगती है कि बाहर का पूरा वातावरण खेल विरोधी और काम के पक्ष में है।

सामान्य रूप से कहें तो मुक्त शिक्षा की विधि बारह साल से कम उम्र के बच्चों के लिए अमूमन सफल रहती है। पर बारह साल से बड़े बच्चों को ज़ोर-ज़बरदस्ती परोसी गई शिक्षा से उबरने में काफी लम्बा समय लगता है।

समरहिल में निजी सत्र

पहले मेरा काम कक्षा में पढ़ाना नहीं बल्कि बच्चों को निजी स्तर पर पढ़ाना था। अधिकांश बच्चों को मनोवैज्ञानिक ध्यान की भी ज़रूरत थी। पर अक्सर कुछ बच्चे ऐसे होते थे जो दूसरे स्कूलों से आते थे। आज़ादी से अभ्यस्त होने की प्रक्रिया को तेज़ बनाने के लिए निजी सत्र ज़रूरी होते थे। अगर बच्चा अन्दर से पूरी तरह बँधा हो तो वह आज़ाद होने की स्थिति से समझौता नहीं कर पाता।

निजी सत्र दरअसल अलाव के पास बैठकर खुली बातचीत के सत्र होते थे। मेरे

मुँह में पाइप होता था और अगर बच्चा सिगरेट पीने का आदी हो तो वह भी सिगरेट पी सकता था। सिगरेट अक्सर वातावरण की औपचारिकता को तोड़ने में मदद करती थी।

एक बार मैंने एक चौदह वर्षीय लड़के को बातचीत के लिए बुलाया। वह एक निजी स्कूल से समरहिल हाल में ही आया था। मैंने देखा कि उसकी उँगलियाँ सिगरेट से पीली पड़ी थीं। सो मैंने अपनी सिगरेट का पैकेट निकाला और उसे सिगरेट लेने को कहा। “धन्यवाद,” वह हकलाते हुए बोला, “मैं सिगरेट नहीं पीता, सर!”

“झूठे कहीं के, एक सिगरेट उठा लो,” मैंने मुस्कराते हुए कहा। और उसने सिगरेट ली। मैं एक ही ढेले से दो शिकार कर रहा था। मेरे सामने एक ऐसा लड़का था जिसके लिए हेडमास्टर का मतलब था एक कठोर, नैतिक अनुशासन लागू करने वाला व्यक्ति, जिससे हर बार झूठ बोलने की ज़रूरत पड़ती है। उसे झूठा कह मैं खुद उसके स्तर पर उतर रहा था। साथ ही सत्ता के प्रति उसके नज़रिए पर भी चोट कर रहा था। काश उस पहले साक्षात्कार के समय उसके चेहरे के हाव भाव की मैं फोटो ले पाता।

उसे उसके पिछले स्कूल से चोरी के इल्ज़ाम के कारण निकाल दिया गया था। “सुना है तुम कुछ उचक्के से हो,” मैंने कहा। “बताओ तो रेल कम्पनी को ठगने के लिए तुम्हारे पास सबसे अच्छी तरकीब कौन सी है?”

“मैंने कभी रेल कम्पनी को ठगने की कोशिश नहीं की है, सर।”

“ओहो,” मैंने कहा, “कैसे चलेगा। तुम्हें कोशिश तो करनी चाहिए। मुझे तो कई तरीके पता हैं।” मैंने उसे कुछ तरीके बताए। वह मुँह बाए रह गया। उसे लगा वह ज़रूर किसी पागलखाने में आ पहुँचा है। स्कूल का प्रिंसिपल उसे बेहतर चोर बनने के गुर सिखा रहा है? सालों बाद उसने बताया कि वह साक्षात्कार उसके जीवन का सबसे बड़ा धक्का था।

ऐसे निजी सत्रों की ज़रूरत कैसे बच्चों को होती है? सबसे अच्छा जवाब कुछ उदाहरणों से मिल सकेगा।

बालवाड़ी की शिक्षिका लूसी मेरे पास आकर कहने लगी कि पेगी बड़ी दुखी और असामाजिक लगती है। मैंने कहा, उसे मेरे पास निजी सत्र के लिए भेजना। पेगी मेरी बैठक में आई।

“मुझे कोई सत्र-वत्र नहीं चाहिए,” वह बैठते हुए बोली। “वे बेवकूफी भरे होते हैं।” “बिल्कुल ठीक,” मैंने हाँ में हाँ मिलाई। “इसमें समय बर्बाद ही होता है। हम कोई पाठ-वाठ नहीं करेंगे।”

उसने बात पर कुछ विचार किया। तब धीरे से बोली, “अगर छोटा-सा हो तो मुझे

कोई ऐतराज नहीं होगा।” इस बीच वह मेरी गोद में बैठ गई। मैंने उसकी माँ और पिता के बारे में और खासकर उसके छोटे भाई के बारे में पूछा। उसने बताया कि उसका भाई बिल्कुल गधा है।

“ज़रूर होगा,” मैंने सहमति जताई। “क्या तुम्हें लगता है माँ उसे तुमसे ज़्यादा चाहती है?”

“वह दोनों को बराबर चाहती है,” उसने जल्दी से कहा, पर साथ ही जोड़ा, “कम से कम वह कहती तो यही है।”

कई बार बच्चे किसी दूसरे बच्चे से झगड़े के कारण भी दुखी हो जाते हैं। पर ज़्यादातर घर से आई चिट्ठी ही परेशानी का कारण बनती है। खासकर जब चिट्ठी में यह लिखा हो कि किसी भाई या बहन को नई गुड़िया या साइकिल मिली है। हमारा सत्र खत्म हुआ और पेगी बाहर निकलते समय खुश नज़र आई।

हर नए बच्चे के साथ बात इतनी आसान नहीं होती। एक बार एक ग्यारह साल का बच्चा आया जिसे यह बताया गया था कि डॉक्टर बच्चों को दुनिया में लाते हैं। उस बच्चे को झूठ और भय से उबारने में काफी मेहनत करनी पड़ी। क्योंकि ऐसे बच्चे हस्तमैथुन को लेकर अपराध-बोध के तले दबे होते हैं। और इस अपराधबोध को नष्ट करने से ही बच्चे को खुशी मिलना सम्भव है।

अधिकांश छोटे बच्चों को नियमित सत्रों की ज़रूरत नहीं पड़ती। आदर्श स्थिति जिसमें नियमित रूप से निजी पाठ दिए जाएँ, वह होती है जब बच्चा स्वयं उसकी माँग करे। कुछ बच्चे इसकी माँग करते भी हैं। पर छोटे विरले ही ऐसा करते हैं।

सोलह साल का चार्ली हमउम्रों के सामने खुद को हीन महसूस करता था। मैंने उससे पूछा कि यह भावना उसमें कब सबसे ज़्यादा उभरी। वो बोला जब वह अपने दोस्तों के साथ नहाता है क्योंकि उसका शिश्न सभी से छोटा है। मैंने उसको समझाया कि उसमें यह डर कैसे समाया। वह छह बहनों के परिवार में सबसे छोटा था। सभी उससे काफी बड़े थे। उसके और उसकी सबसे छोटी बहन के बीच दस साल का फासला था। परिवार में महिलाओं का वर्चस्व था। पिता गुज़र चुके थे और घर में बड़ी बहनों का दबदबा था। इसलिए चार्ली अपने आप को महिलाओं की नज़र से देखने लगा ताकि उसके पास भी सत्ता हो।

दस निजी सत्रों के बाद चार्ली ने मेरे पास आना बंद कर दिया। मैंने जब इसका कारण पूछा तो वह बोला, “अब मुझे इसकी ज़रूरत नहीं है।” मैंने पूछा, “क्यों।” उसने खुशी-खुशी बताया, “मेरा शिश्न अब बर्ट के बराबर है।”

लेकिन इसमें उपचार के इन छोटे सत्रों के अलावा कुछ और भी छुपा था। चार्ली को बताया गया था कि हस्तमैथुन की आदत से बड़ा होने पर आदमी नपुंसक बन

सकता है। और इसी डर ने उसे शारीरिक रूप से प्रभावित किया था। उसका इलाज अपराधबोध व नपुंसकता की बेवकूफी को खत्म करने से हुआ। चार्ली ने एक-दो साल बाद समरहिल छोड़ा। अब वह एक स्वस्थ संतुष्ट ज़िन्दगी में आगे बढ़ता इन्सान है।

सिल्विया के पिता सख्त मिज़ाज के थे। वे कभी उसकी तारीफ नहीं करते थे। बल्कि हमेशा उसकी आलोचना करते उसके पीछे पड़े रहते। उसके जीवन की एक ही तमन्ना थी कि वह अपने पिता का प्यार पा सके। अपनी कहानी बताते वह खूब रोई। ज़ाहिर था कि बेटी के मनोविश्लेषण से पिता का व्यवहार नहीं बदल सकता है। सिल्विया जब तक बड़ी होकर घर से दूर न चली जाती उसकी स्थिति बदलने वाली न थी। मैंने उसे चेताया कि कहीं वह अपने पिता से बच निकलने के चक्कर में किसी गलत व्यक्ति से विवाह न कर ले।

“कैसे गलत व्यक्ति से?” उसने जानना चाहा।

“जो तुम्हारे पिता जैसा हो, जो तुम्हें मानसिक यातना देना चाहता हो।”

सिल्विया की कहानी दुखद थी। समरहिल में वह सबसे मिलती-जुलती थी। उसका व्यवहार दोस्ताना था, वह किसी को आहत नहीं करती थी पर घर पर उसे शैतान कहा जाता था। ज़ाहिर है कि मनोविश्लेषण की दरकार बेटी को नहीं पिता को थी।

एक और केस था। नन्ही फ्लोरेन्स का जिसका कोई समाधान नहीं था। वह एक अवैध संतान थी, पर उसे इस बात का पता नहीं था। मेरा अनुभव बताता है कि हरेक अवैध बच्चे को अवचेतन रूप से यह पता होता है कि वह अवैध है। फ्लोरेन्स निश्चित रूप से यह जानती थी कि उसके पीछे कोई रहस्य ज़रूर है। मैंने उसकी माँ को सुझाया कि उसकी बेटी में घृणा और दुख खत्म करने का एक ही इलाज है कि उसे सच बताया जाए।

“न, मेरी हिम्मत नहीं होगी, नील। मुझे तो कोई फर्क नहीं पड़ेगा। पर अगर मैं उसे बता दूँ तो वह बात अपने तक नहीं रख पाएगी। और मेरी माँ उसका नाम अपनी वसीयत से काट देगी।”

मुझे डर है कि फ्लोरेन्स की मदद करने के लिए हमें तब तक इन्तज़ार करना होगा जब तक नानी जी स्वर्ग न सिधारे। जब तक उससे सच्चाई छुपाई जाएगी कुछ नहीं हो सकेगा।

हमारा एक पुराना छात्र बीस बरस का होने पर वापस आया और उसने कुछ निजी पाठ चाहे।

“पर जब तुम यहाँ थे, उस दौरान हम दर्ज़नों बार मिल चुके हैं।”

“जानता हूँ,” उसने कुछ उदासी से कहा, “पर उन दर्ज़नों बार मैंने कोई परवाह न की थी। लेकिन मुझे अब उसकी ज़रूरत लगती है।”

आजकल मैं नियमित थेरेपी नहीं देता। सामान्य बच्चों को जब जन्म और हस्तमैथुन के जवाब मिल जाते हैं, जब वे यह समझने लगते हैं कि परिवारिक परिस्थितियाँ किस प्रकार घृणा और जलन को पैदा करती हैं, तो आगे करने को कुछ खास नहीं रह जाता। बच्चों की मानसिक परेशानियों का इलाज यही है कि उनकी भावनाओं को निर्बाध निकलने दिया जाए। बच्चों को मनोचिकित्सा के सिद्धान्त बताने में या उसे यह कहने से कि तुम्हारे मन में फलों ग्रन्थि है कोई फायदा नहीं होता।

मुझे एक पन्द्रह साल के बच्चे की याद आती है जिसकी मैंने मदद करनी चाही थी। वह हफ्तों तक मेरे पास आता रहा और एक शब्द में जवाब देता रहा। मैंने अगले सत्र के दौरान रुख पलटा और कहा, “मैं तुम्हें आज बताऊँगा कि मैं तुम्हारे बारे में क्या सोचता हूँ। तुम आलसी, बेवकूफ, अभिमानी और द्वेष से भरे हो।”

“मैं ऐसा हूँ?” उसने गुस्से से लाल होकर पूछा, “और आप खुद को क्या समझते हैं?” उस पल के बाद वह सहज हो गया और उसके लिए मतलब की बात करना आसान बन गया।

एक ग्यारह साल का लड़का था जॉर्ज। उसके पिता ग्लैसगो के पास के एक गाँव में छोटे व्यापारी थे। बच्चे के चिकित्सक ने उसे मेरे पास भेजा। उसकी समस्या थी मन में गहरा पैटा डर। उसे घर से दूर गाँव के स्कूल तक जाने में डर लगता था। घर से निकलना हो तो वह डर से चीखने-चिल्लाने लगता। बड़ी परेशानी के साथ उसके पिता उसे समरहिल ला पाए। वह खूब रोया और पिता से लिपट गया ताकि वे घर न लौटें। मैंने उसके पिता को सुझाया कि वे कुछ दिन रुकें।

उसके चिकित्सक ने मुझे उसका इतिहास भेज दिया था। उनकी टिप्पणियाँ मुझे सही और उपयोगी लगीं। पिता के घर लौटने का सवाल हमारे सामने था। मैंने जॉर्ज से बात करने की कोशिश की, पर वह बिलखता रहा कि वह घर लौटना चाहता है। “यह तो जेल है,” उसने सुबकते हुए कहा। मैं उसके आँसुओं की परवाह किए बिना बात करता चला।

“जब तुम चार साल के थे, तब तुम्हारे भाई को अस्पताल ले जाया गया था। वह वहाँ से ताबूत में बन्द लौटा था”। (जॉर्ज और सुबकने लगा।) “तुम्हें घर से निकलने में यही डर सताता है कि कहीं तुम्हें भी कुछ हो जाएगा और तुम ताबूत में बन्द लौटोगे।” (सुबकना और तेज़ हो गया।) “पर दरअसल बात यह नहीं है जॉर्ज। तुमने अपने भाई को मार डाला था।”

उसने बात का ज़ोरदार विरोध किया, मुझे लतियाने की कोशिश की।

“तुमने उसे सच में नहीं मारा था, पर तुम्हें लगता था कि उसे तुम्हारी माँ का

ज़्यादा प्यार मिलता है। इसलिए तुम अक्सर इच्छा करते थे कि वह मर जाए। जब वह सच में मर गया तो तुम्हारे मन में अपराधबोध बैठ गया। तुम्हें लगा कि तुम्हारे चाहने से ही उसकी मौत हो गई। और अब तुम्हें लगता है कि तुम घर से दूर जाओगे तो तुम्हें भगवान सज़ा देने के लिए मार डालेगा।” उसका सुबकना थम गया। अगले दिन थोड़े नाटक के बाद उसने अपने पिता को लौटने दिया।

कुछ समय तक जॉर्ज को घर की याद सताती रही। पर अगली कड़ी यह थी कि अठारह महीने बाद जब वह छुट्टियों में घर लौटा तो उसने अकेले यात्रा की। लन्दन पहुँचकर खुद स्टेशन बदला और तब घर गया। समरहिल लौटते समय भी उसने ठीक वही किया।

मुझे अब यह और भी सही लगने लगा है कि उपचार की ज़रूरत बच्चों को उस वक्त नहीं होती जब वे आज़ादी के वातावरण में अपनी मनोग्रन्थियों से खेल सकें। पर जॉर्ज जैसे मामले में केवल आज़ादी से काम नहीं चलता।

पहले मैंने चोरों के साथ भी ऐसे सत्र किए हैं, उसका परिणाम देखा है। पर ऐसा भी हुआ है कि कुछ चोरी करने वाले बच्चों ने इन सत्रों के लिए आने से इन्कार किया है। फिर भी तीनेक साल आज़ादी की हवा में साँस लेने के बाद उनकी चोरी की आदत छूट गई।

समरहिल में दरअसल प्रेम ही इलाज करता है। बच्चों को यहाँ समर्थन मिलता है और स्वयं के प्रति ईमानदार बने रहने की आज़ादी भी। हमारे पैंतालीस बच्चों में चन्द ही ऐसे हैं जिन्हें निजी सत्रों की दरकार पड़ती है। मेरा यह विश्वास दिनों दिन बढ़ रहा है कि रचनात्मक कार्य द्वारा इलाज किया जा सकता है। मैं चाहता हूँ कि बच्चे ज़्यादा से ज़्यादा हाथ का काम, नाटक और नृत्य आदि करें।

मैं सभी बच्चों के लिए पिता का प्रतीक हूँ जो स्वाभाविक भी है। और मेरी पत्नी माँ का। सामाजिक रूप से मेरी पत्नी को माँ के प्रति लड़कियों के अवचेतन में पत्नी नफरत झेलनी पड़ती है, जबकि मुझे उनका प्रेम मिलता है। लड़के मेरी पत्नी को अपनी माँ का सा प्यार देते हैं और मुझे मिलता है उनका आक्रोश।

पर लड़के अपना आक्रोश उतनी आसानी से ज़ाहिर नहीं करते जितनी आसानी से लड़कियाँ करती हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि लड़के अपना गुस्सा चीज़ों पर निकाल लेते हैं। एक नाराज़ लड़का गेंद को लतियाता है जबकि गुस्से से भरी लड़की किसी माँ प्रतीक को अपशब्द कहती है।

फिर भी सच्चाई यह है कि एक खास समय ही है जब लड़कियों को झेलना सच में मुश्किल होता है। वह है किशोरावस्था के पहले का समय और किशोरावस्था का पहला वर्ष। पर सभी लड़कियाँ इस चरण से गुज़रें यह ज़रूरी भी नहीं है। यह सब

उनके पिछले स्कूल के अनुभव पर और खासकर सत्ता के प्रति उनकी माँ के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है।

निजी सत्रों के दौरान मैं घर और स्कूल के प्रति उनकी प्रतिक्रियाओं के बीच जो रिश्ते थे उसकी ओर संकेत करता था। अपनी आलोचना को मैं पिता की आलोचना होने की बात बताता। मेरी पत्नी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को मैं माँ के विरुद्ध आरोप दर्शाता था। मैं इस विश्लेषण को वस्तुगत स्तर तक रखता क्योंकि आत्मगत गहराइयों तक उतरना बच्चों के लिए अनुचित होता।

ज़ाहिर है कि ऐसे कुछ मौके भी आते हैं जब एक आत्मगत विश्लेषण ज़रूरी होता है, जैसा जेन को लेकर हुआ। तेरह वर्षीय जेन स्कूल भर में घूमती और तमाम बच्चों से कहती कि नील उन्हें बुला रहा है।

मेरे पास बच्चों का ताँता बँध गया “जेन ने कहा कि आपने बुलाया है।” मैंने जेन को बाद में बताया कि दूसरों को मेरे पास भेजने का मतलब यह है कि दरअसल वह खुद आना चाहती थी।

इन सत्रों के दौरान मैं क्या विधि अपनाता था? मेरा कोई तयशुदा तरीका नहीं था। कभी मैं सवाल पूछता, “जब आइने में अपनी शकल देखते हो तो क्या वह पसन्द आती है?” जवाब हमेशा “नहीं” होता।

“अपने चेहरे में सबसे खराब क्या लगता है?” जवाब हमेशा होता, “मेरी नाक।”

वयस्क भी यही जवाब देते हैं। बाहरी दुनिया के लिए चेहरा ही व्यक्ति है। जब लोगों को याद करते हैं तो चेहरे ही उभरते हैं। जब हम बात करते हैं तो हम चेहरे ही देखते हैं। यूँ हमारे आन्तरिक ‘स्व’ का बाहरी चित्र हमारा चेहरा बन जाता है। जब कोई बच्चा कहता है कि उसे अपना चेहरा पसन्द नहीं है तो उसका मतलब है कि उसे अपना व्यक्तित्व पसन्द नहीं है। मेरा अगला सवाल चेहरे से हटकर ‘स्व’ से जुड़ा होता है। “अपने आप में सबसे ज़्यादा घृणा किस चीज़ से होती है?” मैं पूछता।

अमूमन जवाब शरीर से जुड़ा होता। “मेरे पैर बेहद बड़े हैं।” “बेहद मोटा हूँ।” “बहुत छोटी हूँ।” “मेरे बाल।” मैं कोई मत ज़ाहिर नहीं करता। कभी सहमत नहीं होता कि वह लड़का या लड़की बहुत मोटा या पतली है। न मैं बातचीत को किसी खास दिशा में बढ़ाने की कोशिश करता। अगर शरीर में रुचि लगती हो तो हम उसके बारे में तब तक बात करते जब तक कुछ और कहने को नहीं बचता। तब हम व्यक्तित्व की ओर बढ़ते।

कई बार मैं एक परीक्षा भी ले लेता। “मैं कुछ चीज़ें लिखता हूँ, उनसे तुम्हें जाँचूँगा। तुम्हें जितने सही लगें, उतने नम्बर तुम खुद को देना। उदाहरण के लिए तुमसे

पूछूँगा कि तुम खुद को खेलकूद में या साहस में सौ में से कितने नम्बर दोगे?”
और यूँ परीक्षा शुरू हो जाती।

एक चौदह साल के लड़के की परीक्षा कुछ यूँ थी:

शकल सूरत : “ओह, तकरीबन पैंतालीस प्रतिशत।”

दिमाग : “साठ।”

साहस : “पच्चीस।”

वफादारी : “मैं अपने दोस्तों से दगा नहीं करता - अस्सी।”

संगीत का ज्ञान : “शून्य।”

हाथ का काम : *(कुछ बुदबुदाया, अस्पष्ट उत्तर।)*

घृणा : “कठिन सवाल है। मुझे पता नहीं।”

खेलकूद : “छियासठ।”

सामाजिक भावना : “नब्बे।”

बेवकूफी : “ओह, करीब एक सौ नब्बे प्रतिशत।”

ज़ाहिर है कि बच्चे के उत्तरों से चर्चा का मौका मिलता था। मैं हमेशा बच्चे के अहम् से शुरू करता था क्योंकि इससे उसकी रुचि जगती थी। इससे जब हम उसके परिवार की चर्चा करते तो बच्चा सहज होता और रुचि भी लेता।

छोटे बच्चों के साथ बातचीत अधिक स्वतःस्फूर्त होती। मैं बच्चे के जवाबों के सहारे आगे बढ़ता। छह साल की मार्गरेट के पहले सत्र का उदाहरण लें। वह मेरे कमरे में आई और बोली “मुझे निजी सत्र चाहिए।”

“ठीक है” मैंने कहा।

वह आरामकुर्सी में बैठी।

“निजी सत्र आखिर होता क्या है?” उसने पूछा।

“सीखने की चीज़ नहीं है यह,” मैंने कहा। “पर मेरी जेब में कहीं एक गोली थी ज़रूर। ये रही।” मैंने उसे मीठी गोली दी।

“तुम्हें निजी सत्र क्यों लेना है?”

“एविलिन को निजी सत्र दिया था, इसलिए मुझे भी चाहिए।”

“बढ़िया! तुम शुरू करो। तुम्हें किस बारे में बात करनी है?”

“मेरी एक गुड़िया है।” *(चुप्पी)* “वो आले में रखी चीज़ कहाँ से लाए?” *(ज़ाहिर है कि सवाल का जवाब पाने तक उसे रुकना नहीं है।)* “इस घर में तुम आए उससे पहले यहाँ कौन रहता था?” उसके सवालों से पता चला कि वह कोई सच्चाई

जानना चाहती है। मुझे अन्दाज़ से यह लगता है कि वह जन्म के बारे में जानना चाहती है।

“बच्चे कहाँ से आते हैं?” मैं अचानक पूछता हूँ।

मार्गरेट उठकर दरवाज़े तक जाती है।

“मुझे निजी सत्र पसन्द नहीं है,” इतना कहकर वह बाहर निकल जाती है। पर कुछ ही दिनों बाद फिर से निजी सत्र चाहती है - और हम आगे बढ़ते हैं।

नन्हे टॉमी, उम्र छह साल, को निजी सत्र तब तक बुरा नहीं लगा जब तक उनमें ‘क्रूर’ बातें नहीं होतीं। पहले तीन सत्रों में वह रुष्ट होकर चला गया। मुझे पता था क्यों। मुझे मालूम था कि केवल क्रूर चीज़ें उसे पसंद थीं। वह हस्तमैथुन पर पाबंदी का शिकार था।

कई बच्चों को कभी निजी सत्र नहीं दिया गया। क्योंकि वे इसे चाहते ही नहीं थे। उनके अभिभावकों ने उन्हें झूठ और उपदेशों के सहारे नहीं पाला था।

थेरेपी तुरन्त इलाज नहीं करती। जिस बच्चे का उपचार चल रहा हो उसे लगभग साल भर तक कुछ फायदा नहीं होता। इसलिए मैं उन बड़े छात्र-छात्राओं को लेकर हताश नहीं होता जो स्कूल से उस स्थिति में ही निकल जाते हैं जिसे हम अधपकी मानसिक स्थिति कह सकते हैं।

टॉम को हमारे पास बस इसलिए भेजा गया क्योंकि वह अपने स्कूल में असफल रहा था। मैंने उसके साथ कई गहन सत्र किए। परन्तु इसका कोई ज़ाहिर असर नहीं हुआ। जब उसने समरहिल छोड़ा तो लगता यह था कि वह जीवन में भी असफल ही रहेगा। पर साल भर बाद उसके अभिभावकों का पत्र आया। उन्होंने बताया कि वह डॉक्टर बनना चाहता है और खूब जमकर पढ़ाई कर रहा है।

बिल तो और भी लाइलाज लगता था। उसे तीन साल तक निजी सत्र देने पड़े। जब स्कूल छोड़ा तो वह एक दिशाहीन अटारह वर्षीय लड़का था। साल भर वह छुटपुट नौकरियाँ करता रहा। तब उसने तय किया कि वह खेती करना चाहता है। मैंने सुना है कि वह अच्छा काम कर रहा है और उसे अपना काम पसन्द भी है।

दरअसल ये निजी सत्र पुनर्शिक्षा ही थे। इनका लक्ष्य था उन तमाम ग्रंथियों को छॉटना जो नैतिकता के उपदेशों व भय से उपजती हैं।

समरहिल जैसी मुक्तशाला बिना ऐसे सत्रों के भी चलाई जा सकती है। वे तो दिमागी सफाई कर पुनर्शिक्षा की प्रक्रिया को तेज़ भर करते हैं ताकि आज्ञादी का सुहाना मौसम शुरू हो सके।

स्वशासन

समरहिल एक स्वशासित शाला है, जिसका स्वरूप लोकतांत्रिक है। सामाजिक या सामूहिक जीवन से जुड़ी सभी बातों को, जिसमें सामाजिक अपराधों की सज़ा भी शामिल है, शनिवार की आमसभा में वोट द्वारा तय किया जाता है।

हरेक शिक्षक और बच्चे का एक-एक वोट होता है, फिर चाहे उनकी उम्र कुछ भी हो। मेरे और एक सात साल के बच्चे के मत का दर्जा समान है।

कोई मुस्कुराकर कह सकता है, “पर तुम्हारी आवाज़ की कीमत तो ज़्यादा होगी ही, न?” इसे भी जाँच लें। एक बार मैंने सुझाव रखा कि सोलह साल से कम उम्र वाले किसी बच्चे को धूम्रपान न करने दिया जाए। मैंने अपनी बात के तमाम तर्क पेश किए - तम्बाकू नशा है, ज़हरीला है, बच्चों में दरअसल इसकी चाहत भी नहीं होती। वे तो यह जताने के मकसद से सिगरेट पीते हैं कि वे बहुत बड़े हो गए हैं। इन तर्कों के विरुद्ध तमाम तर्कों की बौछार हुई। तब वोट पड़े। मेरा सुझाव काफी वोटों से पिट गया।

पर इसके बाद जो हुआ वह गौर करने लायक है। मेरे परास्त होने के बाद एक सोलह साल के लड़के ने प्रस्ताव रखा कि बारह साल से कम उम्र वाले बच्चों को सिगरेट पीने की छूट न हो। उसका सुझाव मान लिया गया। पर अगले ही सप्ताह बारह साल के एक बच्चे ने नया नियम वापस लेने की बात यह कहकर की कि, “हम सब पाखानों में लुकछिपकर सिगरेट पी रहे हैं। जैसे कठोर स्कूल के चंट बच्चे करते हैं। मेरा मानना है कि यह समरहिल के विचार के विरुद्ध है।” उसके भाषण पर खूब तालियाँ बजीं और सभा ने नियम वापस ले लिया। आशा है मैं स्पष्ट कर सका हूँ कि मेरी आवाज़ हमेशा एक बच्चे की आवाज़ से ज़्यादा ताकतवर नहीं होती।

एक बार मैंने सोने के समय के नियम को तोड़ने और उसके फलस्वरूप अगली सुबह उनींदे बच्चों के इधर-उधर घूमने की कड़ी आलोचना की। मैंने सुझाव दिया कि जब कोई बच्चा यह नियम तोड़े तो सज़ा के बतौर उसका पूरा जेबखर्च कट जाना चाहिए। जवाब में एक चौदह वर्षीय बच्चे ने कहा, “जो रतजगे के बावजूद अगली सुबह जग पाएँ उन्हें हर घण्टे के हिसाब से एक पेनी इनाम मिलना चाहिए।” मुझे कुछ वोट मिले परन्तु अधिकतर वोट उसे ही मिले।

समरहिल की सरकार में कोई अफसरशाही नहीं है। हर सभा का सभापति एक

अलग व्यक्ति होता है, जिसे पिछली सभा का सभापति नियुक्त करता है। सचिव का काम स्वैच्छिक होता है। सोने के समय के अधिकारी कुछ सप्ताह में बदल दिए जाते हैं।

हमारा लोकतंत्र अच्छे कानून बनाता है। उदाहरण के लिए बिना लाइफ गार्ड की मौजूदगी के समुद्र में कोई नहीं तैरेगा। और लाइफ गार्ड हमेशा शिक्षक होते हैं। छतों पर चढ़ना मना है। समय से सोना ज़रूरी है, नहीं तो स्वतः फाइन लगता है। छुट्टी होने के पहले वाले बृहस्पति या शुक्रवार को कक्षाएँ लगे या नहीं, यह आमसभा में हाथ खड़े कर तय कर लिया जाता है।

सभाओं की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि सभापति कमज़ोर है या मज़बूत। क्योंकि पैतालीस जोशीले बच्चों के बीच व्यवस्था बनाए रखना आसान काम नहीं है। सभापति शोर मचाने वालों पर फाइन लगा सकता है। किसी कमज़ोर सभापति के कार्यकाल में ढेरों फाइन जमने लगते हैं।

शिक्षक चर्चा में हिस्सा लेते हैं। मैं भी लेता हूँ। पर कई ऐसी स्थितियाँ होती हैं जहाँ मुझे निष्पक्ष रहना पड़ता है। मैंने कभी यह भी देखा है कि जिस पर किसी जुर्म का आरोप लगाया गया, वह गवाही के बूते पर साफ छूट गया जबकि उसने अकेले में मुझे बताया था कि उसने गुनाह किया था। ऐसे में मैं हमेशा उसी व्यक्ति का पक्ष लेता हूँ।

अपना वोट डालने या प्रस्ताव रखने में मेरी भागीदारी रहती है। इसका एक उदाहरण देखें। मैंने एक बार सवाल उठाया कि बैठकघर में फुटबॉल खेली जानी चाहिए या नहीं? बैठकघर मेरे दफ्तर के नीचे है। मैंने बताया कि काम करते समय मुझे फुटबॉल का शोर पसन्द नहीं है। सो मेरा सुझाव था कि कमरों के अन्दर फुटबॉल खेलने पर मनाही लगा दी जाए। कुछ लड़कियों, कुछ बड़े लड़कों और अधिकांश शिक्षकों ने मेरा समर्थन किया। पर मेरा प्रस्ताव पारित न हो सका। मतलब हुआ कि मुझे शोर-शराबे को झेलने पर बाध्य होना पड़ा। कई बैठकों में इस पर काफी बहसबाज़ी हुई। अन्ततः मुझे बहुमत का समर्थन मिला और बैठकघर में फुटबॉल खेलना बन्द हो सका। यही वह तरीका है जिससे हमारे स्कूल के लोकतंत्र में अल्पमत को अपने अधिकार मिलते हैं। उन्हें अपने अधिकार बारबार माँगने पड़ते हैं। यह बात छोटे बच्चों पर उतनी ही लागू होती है जितनी वयस्कों पर।

स्कूली जीवन के कुछ पक्ष ऐसे भी हैं जो स्वशासन के तहत नहीं आते। मेरी पत्नी सोने के कमरों की व्यवस्था, खाने में कब, क्या बनेगा और बिलों का लेनदेन सँभालती है। मैं शिक्षकों को नियुक्त करता हूँ और अगर वे अनुपयुक्त हों तो उन्हें जाने को कहता हूँ।

समरहिल में स्वशासन का मकसद केवल कानून बनाना नहीं है, बल्कि एक समुदाय के सामाजिक पक्षों पर चर्चा करना भी है। हर सत्र की शुरुआत में सोने के समय के नियम मतदान से तय किए जाते हैं। यह उम्र के अनुसार तय किया जाता है। तब सामान्य व्यवहार सम्बंधी मसले उठते हैं। खेलकूद की समिति चुनी जाती है, साल शेष होने पर नृत्य आयोजन की समिति और नाट्य समिति, सोने के समय के अधिकारी, शहर में जाने पर निगरानी करने वाले अधिकारी; जो स्कूल के बाहर किए गए दुर्व्यवहार की रपट देते हैं आदि भी चुने जाते हैं।

जो विषय हमेशा उत्तेजना पैदा करता है वह है खाने का। मैंने कई मर्तबा उबाऊ बैठकों को इस प्रस्ताव से गर्माया है कि बच्चों को दूसरी बार कोई चीज़ लेने की मनाही कर दी जाए। रसोई में अगर किसी के साथ पक्षपात होता नज़र आता है तो उससे सख्ती से निपटा जाता है। जब रसोईघर से खाना बर्बाद करने की शिकायत होती है तो उसमें सभा की खास रुचि नहीं रहती है। खाने के बारे में बच्चों का दृष्टिकोण निहायत व्यक्तिगत और आत्मकेन्द्रित होता है।

आमसभा में किसी भी तरह की पढ़ाई सम्बंधी चर्चाओं से सब बचते हैं। बच्चे व्यावहारिक होते हैं। उन्हें सिद्धान्त बेहद उबाते हैं। उन्हें ठोस चीज़ें पसन्द आती हैं, अमूर्त नहीं। मैंने एक बार प्रस्ताव रखा कि गाली देना कानूनन बन्द किया जाए और मैंने इसके कारण भी सामने रखे। “मैं एक महिला को उसके बेटे के साथ स्कूल दिखा रहा था। वह बच्चा भावी छात्र था। अचानक से एक तेज़-तर्रार विशेषण सुनाई दिया। वह माँ अपने बेटे को लेकर भागी। भावी अभिभावकों के सामने किसी बेवकूफ की गालियों की वजह से मेरी आय में नुकसान क्यों होना चाहिए? यह नैतिकता का सवाल नहीं है, वित्त का सवाल है। तुम गाली देते हो और मैं एक छात्र खो बैठता हूँ।” मेरे सवाल का जवाब एक चौदह साल के लड़के ने दिया। “नील बकवास कर रहा है। अगर महिला सच में इससे सकते में आ गई है तो ज़ाहिर है कि समरहिल में उसका विश्वास नहीं था। अगर वो अपने बेटे का दाखिला करवा भी देती और जब वह पहली बार घर लौटकर कोई हल्की-सी गाली देता, तो वह उसे तुरन्त स्कूल से निकाल लेती।” सभा ने उसकी बात मानी और मेरा प्रस्ताव गिर गया।

आमसभा में अक्सर दादागिरी के मसले से निपटना पड़ता है। हमारा समुदाय दादाओं से सख्ती बरतता है। मैंने पाया है कि हमारे सूचना-पट पर स्कूल नियमों में दादागिरी वाले नियम को अक्सर रेखांकित कर दिया जाता है - *दादागिरी की सभी घटनाओं से सख्ती से निपटा जाएगा।* फिर भी हमारे यहाँ दादागिरी उतनी नहीं होती जितनी कठोर स्कूलों में होती है। इसका कारण तलाशने की ज़रूरत भी नहीं है। वयस्कों के अनुशासन में बच्चों में नफरत पनपती है। क्योंकि वह इसे वयस्कों पर निकाल नहीं सकता, वह अपने से छोटे या कमज़ोर बच्चे पर

निकालता है। ऐसा समरहिल में कम ही होता है। आमतौर पर दादागिरी वाली घटनाओं की तहकीकात करने पर पता चलता है कि आरोप के पीछे की घटना महज़ इतनी थी कि जेनी ने पेगी को पगली कहा था।

कई बार आमसभा में चोरी की वारदात उठाई जाती है। चोरी की सज़ा कभी सरख्त नहीं होती। पर चुराई चीज़ हमेशा लौटानी पड़ती है। अक्सर बच्चे मुझसे आकर पूछते हैं, “जॉन ने डेविड के कुछ सिक्के चुरा लिए। क्या यह मनोविज्ञान का मसला है? या हम इसे सभा में उठाएँ?”

अगर मुझे लगता है कि बात किसी तरह उस बच्चे के मनोविज्ञान से जुड़ी है, जिसमें बच्चे पर व्यक्तिगत ध्यान देने की ज़रूरत है तो मैं उन्हें मामला छोड़ देने को कहता हूँ। अगर जॉन एक खुश और सामान्य लड़का है, जिसने कोई छुटपुट चीज़ उठा ली है, तो मैं उस पर आरोप लगाने देता हूँ। इससे सबसे बुरा बस यही हो सकता है कि जब तक वह पूरे पैसे लौटा न दे, उसके पास जेब खर्च के लिए फूटी कौड़ी नहीं बचती।

आमसभा की बैठकें कैसे चलाई जाती हैं?

हर सत्र के प्रारम्भ में एक बैठक के लिए एक सभापति चुना जाता है। बैठक के अन्त में वह दूसरे सभापति को चुनता है। ऐसा पूरे सत्र भर होता है। जिस किसी की कोई शिकायत हो, कोई आरोप लगाना हो, सुझाव रखना हो या कोई नए कानून का प्रस्ताव रखना हो, तो वह अपनी बात को आमसभा में रख सकता है।

इसका एक उदाहरण देखें: जिम ने जैक की साइकिल के पैडल ले लिए क्योंकि उसकी खुद की साइकिल दुरुस्त नहीं थी और वह दूसरे लड़कों के साथ सप्ताह के अन्त में होने वाले भ्रमण के लिए जाना चाहता था। सारे सबूतों को देखने के बाद सभा ने तय किया कि उसे यात्रा में जाने नहीं दिया जाए।

सभापति ने पूछा, “कोई आपत्तियाँ?”

जिम खड़ा हुआ और ज़ोर से बोला, “आपत्तियाँ तो होंगी ही।” पर उसने जिस विशेषण का उपयोग किया वह कुछ और था। “यह उचित नहीं है,” वह बोला। “मुझे पता ही नहीं था कि जैक अपने पुराने खटारे का कभी इस्तेमाल भी करता है। वह साइकिल तो कब से झाड़ियों में पड़ी हुई थी। मैं उसका पैडल वापस लगा दूँगा, पर मुझे सज़ा सही नहीं लगती। मुझे यात्रा से निकालना नहीं चाहिए।”

इस पर बहस छिड़ी। बातचीत में पता चला कि जिम को हमेशा घर से साप्ताहिक जेब खर्च मिलता था। पर पिछले छह सप्ताह से उसके पैसे आए ही नहीं थे। उसके पास फूटी कौड़ी न थी। सभा ने तय किया कि सज़ा न दी जाए। और सज़ा नहीं दी गई।

पर जिम का क्या हो? अन्ततः तय होता है कि सब चन्दा करके उसकी साइकिल सुधरवा देंगे। उसके स्कूली साथी मिलजुलकर साइकिल के पैडल खरीद देते हैं और जिम खुशी-खुशी अपनी यात्रा पर जाता है।

आम तौर पर दोषी बच्चा सभा का फैसला मानता है। पर अगर फैसला किसी को बिल्कुल मान्य न हो तो वह अपील कर सकता है। ऐसी स्थिति में सभापति बैठक के अन्त में मामला फिर से उठाता है। अपील के समय मसले को और गौर से देखा जाता है और अमूमन मूल फैसले को असन्तोष के चलते कुछ कम कर दिया जाता है। बच्चे यह बात समझते हैं कि अगर दोषी बच्चे को यह लग रहा है कि उसके साथ अन्याय हो रहा है, तो सम्भवतः सच में अन्याय ही हो रहा हो।

समरहिल का कोई भी दोषी समुदाय की सत्ता के विरुद्ध विद्रोह या नफरत नहीं जताता है। मुझे हमेशा आश्चर्य होता है कि वे सज़ा पाने पर भी विनय जताते हैं।

एक सत्र के दौरान चार बड़े बच्चों पर आमसभा में आरोप लगा कि वे एक गैर-कानूनी काम कर रहे हैं। वे अपने कपड़े बेच रहे थे। इस पर कानूनी पाबन्दी है क्योंकि यह दरअसल माता-पिता के साथ अन्याय तो है ही जो कपड़े खरीदते हैं। साथ ही स्कूल के साथ भी अन्याय है, क्योंकि अभिभावक कपड़े गायब हो जाने पर स्कूल पर अव्यवस्था का दोष मढ़ते हैं। चारों को सज़ा मिली। सज़ा यह कि वे चार दिन स्कूल के बाहर नहीं निकलेंगे और हर रात आठ बजे सोने चले जाएँगे। उन्होंने बिना चूँ-चपड़ किए मान लिया। सोमवार रात जब सब शहर में फिल्म देखने चले गए, मैंने अपराधियों में से एक, डिक को बिस्तर पर पसरे पढ़ते पाया।

“तुम भी अजीब गधे हो,” मैंने कहा। “सब फिल्म देखने चले गए हैं। तुम उठकर घूमते-फिरते क्यों नहीं हो?”

“मज़ाक मत करो,” उसने कहा।

अपने लोकतन्त्र के प्रति समरहिल के छात्र-छात्राओं की निष्ठा अद्भुत है। इसमें न तो भय है न ही नाराज़गी। मैंने एक लड़के को किसी असामाजिक कृत्य के लिए एक लम्बी जाँच से गुज़रते देखा है। उसे सज़ा मिलते देखा है। अक्सर जिस लड़के को सज़ा मिली हो उसे अगली बैठक में सभापति भी चुना जाता है।

बच्चों में न्याय का जो भाव है वह मुझे हमेशा आश्चर्य से भर देता है। उनकी प्रशासनिक क्षमताएँ भी खूब हैं। शिक्षा के रूप में स्वशासन बेहद कीमती है।

कुछ ऐसे भी अपराध होते हैं जो स्वतः दण्ड की श्रेणी में आते हैं। जैसे बिना अनुमति लिए किसी दूसरे की साइकिल चलाना। इस पर छह पेन्स का फाइन है। शहर में जाकर गाली-गलौज करना (स्कूल में इसकी छूट है), फिल्म देखते समय दुर्व्यवहार करना, छत पर चढ़ना, भोजनागार में खाना बर्बाद करना आदि। ये और ऐसे दूसरे अपराधों पर स्वतः फाइन लगता है।

सज़ा अमूमन फाइन ही होती है: सप्ताह भर का अपना जेब खर्च दो या एक फिल्म देखने न जाओ।

जो बच्चे जज बनते हैं उन पर एक आरोप हमेशा लगता है, वह यह कि वे बेहद कठोर दण्ड देते हैं। मुझे ऐसा नहीं लगता। बल्कि लगता यह है कि वे बड़े उदार हैं। कोई ऐसी घटना याद नहीं आती जब किसी को कठोर सज़ा मिली हो। साथ ही दी गई सज़ा का अपराध से रिश्ता होता है।

तीन लड़कियों ने दूसरों की नींद में खलल डाला। सज़ा थी सप्ताह भर तक एक घण्टे पहले सोने जाओ। दो लड़कों ने एक बच्चे पर ढेले फेंके। उनकी सज़ा थी कि वे हॉकी के मैदान तक ढेले ढोकर ले जाएँ।

कई बार ऐसा भी होता जब सभापति कहता यह आरोप बेवकूफी का है और वह तय कर लेता कि किसी सज़ा की ज़रूरत नहीं है।

जब हमारे सचिव पर आरोप लगा कि उसने बिना अनुमति के जिंजर की साइकिल चलाई है तो उसे और दो अन्य शिक्षकों को, जिन्होंने भी ठीक यही किया था, कहा गया कि वे एक-दूसरे को जिंजर की साइकिल पर बैठाकर सामने वाले बाग के दस चक्कर लगाएँ।

जब चार छोटे बच्चे नई वर्कशाप बनाने वाले मज़दूरों की सीढ़ी पर चढ़े तो उन्हें यह सज़ा दी गई कि वे लगातार दस मिनट तक सीढ़ी पर ऊपर-नीचे चढ़ें और उतरें।

सज़ा के मामले में सभा किसी वयस्क की सलाह नहीं लेती। मुझे बस एक वाकया याद आता है जब ऐसा किया गया। तीन लड़कियों ने रसोई पर गुपचुप धावा बोला। बैठक में उनका जेब खर्च जब्त करने की सज़ा दी गई। उसी रात उन्होंने फिर से यही किया, सज़ा के रूप में एक फिल्म देखने की मनाही हुई। वे तीसरी बार फिर रसोई में खाना चुराने पहुँचीं। बैठक में खूब विचार हुआ। सभापति ने मुझसे सलाह की। “हरेक को दो-दो पेन्स का इनाम दो,” मैंने सुझाया। “क्या? पता है ऐसा किया तो पूरा स्कूल ही रात को रसोई में घुसने लगेगा।”

“ऐसा कुछ नहीं होगा,” मैंने कहा, “आज़माकर देखो।”

उसने नई सज़ा आजमाई। दो लड़कियों ने इनाम का पैसा लेने से इन्कार कर दिया। तीनों को घोषणा करते सुना गया कि वे कभी रसोईघर से खाना नहीं चुराएँगी। और सच में उन्होंने खाना नहीं चुराया - लगभग दो महीने तक।

आमसभा में दूसरों पर उपदेश छॉटने का रवैया बिरले ही अपनाया जाता है। इसका आभास तक समुदाय नापसन्द करता है। एक ग्यारह साल का लड़का था। उसे आत्मप्रदर्शन की आदत थी। वह अपनी ओर ध्यान आकर्षित करने के मकसद से

लम्बी, पेचीदा पर बेतुकी टिप्पणियाँ करता था। यानी कोशिश करता पर बाकी बच्चे शोर मचाकर उसे चुप कर देते थे। बच्चे पाखण्ड को फौरन ताड़ लेते हैं।

मेरा विश्वास है कि हम समरहिल में यह सिद्ध कर चुके हैं कि स्वशासन कारगर है। जिस स्कूल में यह न हो उसे किसी सूरत में प्रगतिशील नहीं कहना चाहिए। वह महज़ समझौता स्कूल है। अगर बच्चों को अपने सामाजिक जीवन को खुद पूरी तरह नियमित करने की आज़ादी न हो, तो वह मुक्तशाला हो ही नहीं सकती। जहाँ कोई एक बॉस हो वहाँ वास्तविक आज़ादी नहीं होती। यह बात किसी अनुशासक की बनिस्बत किसी सहृदय बॉस पर ज़्यादा लागू होती है। किसी कठोर बॉस के विरुद्ध एक साहसी बच्चा विद्रोह कर सकता है, पर दुलमुल बॉस बच्चे में अपनी वास्तविक भावनाओं के बारे में अनिश्चय जगाता है।

किसी स्कूल में स्वशासन तब ही सम्भव है जब वहाँ कुछ ऐसे बड़े बच्चे भी हों जो शान्त जीवन पसन्द करते हों और उस उम्र के बच्चों की उदासीनता या विरोध से लड़ सकते हों, जिस उम्र में उनमें उजड़ड़पन हावी होता है। ये बड़े बच्चे ही स्वशासन में विश्वास रखते हैं लेकिन अक्सर उन्हें जनमत नहीं मिलता। दूसरी तरफ बारह साल की उम्र तक के बच्चे स्वशासन खुद नहीं चला सकते। क्योंकि इस उम्र में वे अपनी बातचीत में तो सामाजिक हो सकते हैं पर समुदाय की व्यवस्था चलाने के लिए छोटे होते हैं। लेकिन समरहिल में सात साल तक के बच्चे भी कभी आम सभा में आने से नहीं चूकते।

एक ऐसा बुरा समय आया जब हमारे स्कूल में बहुत कम बड़े बच्चे बच गए थे क्योंकि उनमें से अधिकांश विश्वविद्यालय के इम्तहानों में पास होकर चले गए थे। बहुमत उन बच्चों का रहा जिनपर उजड़ड़पन सवार था। वे अपने भाषणों में तो समुदाय के पक्ष में बोलते थे परन्तु सामुदायिक कार्यों को चलाने में असमर्थ थे। वे खुद ढेरों कानून बनाते हैं फिर उन्हें खुद ही तोड़ने लगते हैं। स्कूल में जो थोड़े से बड़े बच्चे थे वे व्यक्तिनिष्ठ बन चले थे। अपना जीवन अपने समूह में बिताते थे। स्कूल के कायदे-कानून तोड़ने की शिकायत शिक्षकों की ओर से ज़्यादा होने लगी। एक आमसभा में मुझे बच्चों पर आक्षेप लगाने पर बाध्य होना पड़ा। मैंने उन्हें असामाजिक नहीं, बल्कि स्वयं को समाज से ऊपर समझने वाला कहा। आरोप लगाया कि वे सोने के समय के बाद भी जगे रहते हैं और छोटे बच्चों के असामाजिक व्यवहार में कोई रुचि नहीं लेते। सच कहें तो व्यवस्था चलाने में छोटे बच्चों की रुचि सीमित होती है। अगर सब कुछ उन पर छोड़ दिया जाए तो मुझे शक है कि वे कभी सरकार बना पाएँगे। उनके मूल्य हमारे मूल्य नहीं हैं। न ही उनका शिष्टाचार हमारा शिष्टाचार है।

वयस्कों के लिए अमन और चैन से जीने का सबसे आसान तरीका है कठोर अनुशासन। ड्रिल सार्जेन्ट तो कोई भी बन सकता है। समरहिल में हमारी कोशिशें

और भूलें वयस्कों को चैन की ज़िन्दगी जीने नहीं देती। पर बच्चों की ज़िन्दगी भी उतने शोर-शराबे से भरी नहीं हो पाती है जितनी वे चाहते हैं। शायद स्थिति को बच्चों की प्रसन्नता से ही नापा जा सकता है। इस मानदण्ड से चलें तो समरहिल की स्वशासन प्रणाली में हम एक असरकारक समझौता तलाश सके हैं।

खतरनाक हथियारों का हमारा नियम इसी प्रकार का समझौता है। एयरगन पर मनाही है। चन्द बच्चे जो एयरगन चाहते हैं उन्हें यह कानून नापसन्द है। फिर भी वे अमूमन इस नियम को मानते हैं। जब मनाही कम हो तो बच्चे को किसी बात पर इतना बुरा नहीं लगता जितना वयस्कों को लगता है।

समरहिल की एक समस्या सतत है। उसे आप *व्यक्ति बनाम समुदाय* कह सकते हैं। शिक्षक और छात्र-छात्राएँ उस वक्त आजिज़ आ जाते हैं जब किसी समस्यात्मक लड़की के नेतृत्व में कुछ लड़कियाँ दूसरों को परेशान करती हैं। किसी पर पानी फेंकना, सोने के समय का नियम तोड़ना और सबको तंग करना। उनकी नेता जीन पर आमसभा में आरोप लगते हैं। कठोर शब्दों में कहा जाता है कि वह आज्ञादी का दुरुपयोग कर उसे उच्छृंखलता में बदल रही है।

एक मेहमान मनोवैज्ञानिक ने मुझे कहा, “यह गलत हो रहा है। लड़की का चेहरा बताता है कि वह बड़ी दुखी है। उसे कभी प्यार नहीं मिला है। यह खुली आलोचना उसे यही बता रही है कि उसे कोई प्यार नहीं करता। जीन को विरोध नहीं प्रेम की ज़रूरत है।”

मैंने उनसे कहा, “देवीजी, हम उसे प्यार से बदलने की कोशिश कर चुके हैं। कई सप्ताहों तक उसे असामाजिक काम पर इनाम दिया गया है। हमने उसके प्रति स्नेह और सहनशीलता दिखाई है। पर उसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई है। उसने हम सबको बेवकूफ मान लिया है। उसे लगता है कि वह आसानी से अपना आक्रोश हम पर निकाल सकती है। हम एक के पीछे पूरे समुदाय को बलि नहीं दे सकते।”

सच यह है कि इस द्वन्द्व का पूरा जवाब मेरे पास नहीं है। मुझे पता है कि जब जीन पन्द्रह साल की होगी तो वह एक गुण्डाटोली की नेता नहीं रहेगी। उसका व्यवहार भी दोस्ताना हो जाएगा। यह मैं इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि मेरी सार्वजनिक राय में अटूट आस्था है। कोई भी बच्चा सालों-साल तक नापसन्दी और आलोचना को नहीं झेल सकता। जहाँ तक स्कूल की आमसभा का सवाल है, तो ज़ाहिर है कि समस्यात्मक बच्चों के पीछे शेष बच्चों की बलि नहीं चढ़ाई जा सकती।

हमारे पास एक बार एक छह साल का बच्चा आया था जिसकी समरहिल आने से पहले की ज़िन्दगी बड़ी दुखद थी। वह आक्रामक दादागीरी करता था, बेहद तोड़-फोड़ करता था और घृणा से भरा था। चार-पाँच साल की उम्र वाले बच्चों

को उसने खूब यातना दी, वे ज़ार-ज़ार रोए। समुदाय को उनके बचाव का उपाय करना था। ऐसा करना उस दादा लड़के के विरुद्ध ही होता। पर एक बच्चे के माता-पिता की गलतियों की सज़ा उन बच्चों को तो नहीं दी जा सकती जिनके माता-पिता ने बेहद लाड़-प्यार से उन्हें पाला हो।

चन्द ऐसे मौके भी आए जब मुझे किसी बच्चे को इस कारण घर वापस भेजना पड़ा, क्योंकि दूसरे बच्चों के लिए उसने स्कूल नरक बना दिया था। यह बात मैं बड़े दुःख और असफलता की भावना के साथ बता रहा हूँ। पर दूसरा कोई चारा मेरे सामने था ही नहीं।

क्या इस लम्बी अवधि में मुझे स्वशासन पर अपने विचार बदलने पड़े हैं? मोटे-मोटे रूप में नहीं। मैं उसके बिना समरहिल की कल्पना तक नहीं कर सकता। यह तरीका हमेशा लोकप्रिय रहा। हमारे मेहमानों के लिए भी यह एक देखने लायक चीज़ है। मेहमानों की उपस्थिति में नुकसान भी हैं। जैसे एक बैठक में पास बैठी चौदह साल की लड़की फुसफुसाई, “मैं सैनिटरी नैपकिन फेंककर संडास का मुँह बन्द कर देने की बात उठाना चाहती थी। पर देखो तो कितने मेहमान बैठे हैं।” मैंने सुझाया, “उनकी परवाह न करो, जो बात कहनी है वह ज़रूर कहो।” उसने यही किया।

व्यावहारिक नागरिक शास्त्र का शैक्षणिक लाभ है। इसकी महत्ता पर बल देना ही चाहिए। समरहिल के छात्र-छात्राएँ स्वशासन के अधिकार की रक्षा में लड़ने-मरने को तैयार रहते हैं। मेरी राय तो यह है कि स्कूली विषयों की सप्ताह भर की पढ़ाई की तुलना में एक आमसभा का अधिक मूल्य है। सार्वजनिक रूप से भाषण देने के अभ्यास का भी यह एक उम्दा मंच है। अधिकांश बच्चे बिना हिचक के और बेहद अच्छी तरह से बोलते हैं। मैंने कई बार ऐसे बच्चों को, जो न पढ़ सकते हैं, न लिख सकते हैं, अपनी बात बड़ी तरतीब के साथ रखते सुना है।

हमारे समरहिल के लोकतंत्र का कोई विकल्प मुझे तो नहीं सूझता। राजनैतिक लोकतंत्र की तुलना में शायद यह अधिक न्यायपूर्ण भी है। क्योंकि बच्चे एक दूसरे के प्रति कहीं अधिक उदार होते हैं और उनके आम तौर पर शायद निहित स्वार्थ भी नहीं होते। यह एक वास्तविक लोकतन्त्र इसलिए भी है क्योंकि सारे नियम प्रारम्भिक आमसभा में बनाए जाते हैं और निरंकुश चयनित प्रतिनिधियों का प्रश्न भी नहीं उठता।

आज़ाद बच्चे स्वशासन से जो व्यापक नज़रिया पाते हैं वही स्वशासन को इतना महत्वपूर्ण बनाता है। उनके नियम दिखाने के नहीं होते। वे आवश्यक चीज़ों से निपटने के लिए होते हैं। शहर में जाने पर अपेक्षित व्यवहार के नियम कम आज़ाद सभ्यता के साथ समझौता हैं। शहर - बाहरी दुनिया - अपनी ऊर्जा छोटी-मोटी,

गैर-ज़रूरी चीज़ों पर बर्बाद करती है। मानो आपने कैसे कपड़े पहने हैं या कोई अपशब्द कहा हो तो उसका जीवन पर सच में कोई असर पड़ेगा। जीवन के बाहरी शून्य से अलग होने के कारण ही समरहिल में एक सामुदायिक चेतना पनप सकती है, और पनपी भी है। यह चेतना अपने समय से काफी आगे है। सच है कि यहाँ एक फावड़े को साला बेलचा कहा जाता है। पर सच यह है कि अगर आप किसी गड़ढा खोदने वाले से पूछें तो वह भी फावड़े को साला बेलचा ही कहेगा।

सहशिक्षा

अधिकांश स्कूलों में योजनाबद्ध तरीके से लड़कों और लड़कियों को अलग-अलग रखा जाता है खास तौर पर सोने की व्यवस्था में इस नियम का पालन होता है। उनके बीच सम्बंधों को प्रोत्साहित नहीं किया जाता। समरहिल में भी प्रोत्साहित नहीं किया जाता, पर हतोत्साहित भी नहीं किया जाता। उनके बीच स्वस्थ सम्बंध बनते हैं। एक दूसरे के प्रति भ्रम या भ्रांतियाँ नहीं पनपती। ऐसा भी नहीं है कि समरहिल एक बड़ा परिवार है जिसमें सभी प्यारे बच्चे भाई-बहनों की तरह रहते हैं। अगर स्थिति ऐसी होती तो मैं सहशिक्षा का कट्टर विरोधी होता।

वास्तविक सहशिक्षा - उस किस्म की नहीं जिसमें लड़के-लड़कियाँ कक्षा में साथ-साथ बैठकर पढ़ते हैं, लेकिन सोना और रहना अलग-अलग होता है - में ऐसी शर्म भरी जिज्ञासा नहीं पनपती। समरहिल में टॉक-झॉक करने वाले नहीं होते। दूसरे स्कूलों की तुलना में इन बच्चों में यौन सम्बंधों के प्रति चिन्ताएँ भी कम होती हैं। कभी-कभी कोई वयस्क मेहमान आकर पूछता, “क्या ये साथ-साथ नहीं सोते?” जवाब में जब मैं ‘नहीं’ कहता तो वो ज़ोर देकर कहते, “पर क्यों नहीं? इस उम्र में तो मैं इसका बहुत मज़ा लेता।”

इसी तरह के लोग अक्सर मानते हैं कि जब भी लड़के-लड़कियाँ साथ पढ़ते हैं तो उनके बीच यौन सम्बंध होता ही होगा। वे कभी भी इसे स्वीकार नहीं करते कि यही उनके विरोध का कारण है। इसकी बजाय वे यह तर्क देते हैं कि क्योंकि लड़के-लड़कियों की सीखने की क्षमताएँ अलग-अलग होती हैं, इसलिए उन्हें पढ़ाना भी अलग-अलग चाहिए।

सहशिक्षा इसलिए आवश्यक है क्योंकि जीवन भी सहशिक्षा है। लेकिन गर्भ ठहरने के खतरे के चलते कई सारे पालकों और शिक्षकों में सहशिक्षा के प्रति डर बना रहता है। ऐसा भी सुनने में आता है कि सहशिक्षण स्कूलों के कई सारे प्राध्यापक इसकी सम्भावना की चिन्ता में रतजगे करते हैं।

दोनों लिंगों के अनुकूलित बच्चे अक्सर प्यार करने में अक्षम होते हैं। यह खबर यौन सम्बंधों से डरने वालों को तो खुश करने वाली हो सकती है लेकिन एक आम युवा के लिए प्यार न कर पाना एक बड़ी मानवीय त्रासदी है।

एक बार मैंने एक मशहूर प्राइवेट सहशिक्षण स्कूल के कुछ किशोरों से पूछा, “क्या तुम्हारे स्कूल में कोई प्यार-व्यार होता है।” उनका जवाब था “नहीं।” मेरे आश्चर्य ज़ाहिर करने पर उन्होंने समझाया, “लड़के-लड़कियों में कभी-कभार दोस्ती तो हो जाती लेकिन वो शारीरिक सम्बंधों में नहीं बदलता।” उस स्कूल में मैंने कई हैण्डसम लड़के और खूबसूरत लड़कियाँ देखीं। इसलिए मुझे यकीन था कि उस स्कूल में प्रेम विरोधी विचार को ज़बरदस्ती बच्चों पर थोपा जा रहा था। और स्कूल का अति-नैतिक माहौल ऐसे सम्बंधों को पनपने नहीं देता था।

एक बार मैंने एक प्रगतिशील स्कूल के प्राध्यापक से पूछा, “क्या आपके स्कूल में कोई प्रेम सम्बंध होता है?”

“नहीं,” उनका गम्भीर जवाब था। “लेकिन हम तो समस्यात्मक बच्चों को कभी नहीं लेते।”

जो लोग सहशिक्षा के विरुद्ध हैं उनकी आपत्ति यह होती है कि इस पद्धति से लड़के स्त्रैण या औरतों जैसे बनते हैं और लड़कियों में पौरुष जागता है। पर सच्चाई यह है कि वयस्कों के मन में कहीं एक नैतिक भय पैदा होता है जो वास्तव में जलन से पैदा हुआ भय है। प्यार से उपजा शारीरिक सम्बंध दुनिया की सबसे सुखद अनुभूति है। और यही वजह है कि इसे दबाया जाता है। बाकी सब ढोंग है।

जो बच्चे प्रारम्भ से समरहिल में रहे हैं उनके बीच शारीरिक सम्बंध को लेकर मुझे कोई चिन्ता नहीं होती। चिन्ता इसलिए नहीं होती क्योंकि उनका दमन नहीं किया जाता। यही कारण है कि उनमें शारीरिक सम्बंधों को लेकर अस्वाभाविक रुचि नहीं जगती।

कुछ साल पहले दो छात्रों ने एक साथ स्कूल में दाखिला लिया। लड़कों के प्राइवेट स्कूल से आया सत्रह साल का लड़का और लड़कियों के प्राइवेट स्कूल से आई सोलह बरस की लड़की। दोनों में प्यार हो गया। वे हमेशा साथ-साथ रहते। एक देर रात मैंने उनको रोका, “मुझे नहीं मालूम तुम दोनों क्या कर रहे हो। नैतिकता के लिहाज़ से मुझे इसकी कोई परवाह नहीं है। लेकिन इसमें नैतिकता का सवाल ही नहीं है। मामला आर्थिक है। इसलिए मुझे फिक्र है। केट, अगर तुम्हें गर्भ ठहरा जाता है तो मेरा स्कूल बरबाद हो जाएगा।”

मैंने उसे विस्तार से समझाया, “देखो, तुम दोनों समरहिल में हाल ही में आए हो। तुम्हारे लिए आज़ादी का मतलब है कुछ भी करने का हक। स्वाभाविक है कि

तुम्हें स्कूल के प्रति कोई विशेष लगाव नहीं है। अगर तुम यहाँ सात साल की उम्र से आए होते तो मुझे तुम्हें यह सब बताने की ज़रूरत ही नहीं पड़ती। तुम्हारे मन में स्कूल के प्रति इतनी गहरी चिन्ता होती कि तुम समरहिल पर इसके प्रभाव के बारे में ज़रूर सोचते।” इस समस्या से इसी तरह से निपटा जा सकता था। सौभाग्यवश इस विषय पर मुझे उनसे दुबारा बोलने की ज़रूरत ही नहीं पड़ी।

काम

समरहिल का एक सामुदायिक नियम हुआ करता था जिसके अनुसार बारह वर्ष से ऊपर के हरेक बच्चे और शिक्षक को सप्ताह में दो घण्टे, स्कूल परिसर में काम करना ज़रूरी था। इस काम का एक सांकेतिक पारिश्रमिक - छह पेन्स प्रति घण्टा - मिलता था। काम नहीं करने पर एक छोटा-सा फाइन देना पड़ता था। कुछ लोग, जिसमें शिक्षक भी शामिल थे फाइन देकर खुश रहते थे। जो काम करते थे उनमें से अधिकांश की नज़रें घड़ी पर होती थीं। इसमें खेल का कोई पुट नहीं था, सो यह सबको उबाऊ लगता था। इस नियम को जाँचा गया और बच्चों ने सर्वसम्मति से उसे वापस ले लिया।

कुछ साल पहले हमें समरहिल में एक अस्पताल की ज़रूरत थी। हमने तय किया कि भवन हम खुद ही बनाएँगे। ईट-सीमेंट वाला पक्का भवन। हममें से किसी ने पहले एक ईट तक नहीं चिनी थी, पर काम शुरू किया गया। कुछ बच्चों ने नींव खोदी और ईंटों के लिए कुछ पुरानी दीवारें तोड़ीं। पर बच्चों ने पारिश्रमिक की माँग की। दिहाड़ी देने से मना किया गया। अन्ततः भवन शिक्षकों और मिलने आने वाले मेहमानों ने पूरा किया। यह काम बच्चों को बेहद नीरस लगा। उनके अपरिपक्व दिमाग में अस्पताल की ज़रूरत बहुत दूर की चीज़ थी। अस्पताल से उनका स्वार्थ भी नहीं जुड़ा था। पर कुछ ही समय बाद उन्हें साइकिल रखने का शोध चाहिए था, जिसे उन्होंने बिना शिक्षकों की मदद के खुद बनाया।

मैं, बच्चों का वैसे ही बयान कर रहा हूँ जैसे वे होते हैं। जैसा वयस्क चाहते हैं वे हों, उसका नहीं। उनकी सामुदायिक भावना, सामाजिक ज़िम्मेदारी की भावना तब तक विकसित नहीं होती जब तक वे अठारह या उससे अधिक उम्र के नहीं हो जाते। उनकी रुचियाँ तात्कालिक होती हैं और भविष्य का अस्तित्व ही नहीं होता।

मैंने अब तक कोई आलसी बच्चा नहीं देखा। जिस चीज़ को हम आलस कहते हैं वह रुचि या स्वास्थ्य का अभाव होता है। स्वस्थ बच्चा खाली नहीं बैठता, दिन भर कुछ न कुछ करता ही है। मैं एक स्वस्थ बच्चे को जानता था जिसे बेहद

आलसी माना जाता था। दरअसल उसकी गणित में कोई रुचि नहीं थी, पर स्कूल के पाठ्यक्रम में गणित पढ़ना ज़रूरी था। ज़ाहिर है उसे गणित सीखनी ही नहीं थी। इस कारण उसके गणित शिक्षक को वह आलसी नज़र आता था।

हाल में मैंने पढ़ा कि अगर कोई दम्पति किसी शाम नाचने जाए और हरेक नाच में शरीक हो तो वह दम्पति तकरीबन पच्चीस मील पैदल चला होगा। पर नाचते समय वे थकते नहीं हैं। क्योंकि उन्हें इसमें पूरी शाम आनन्द आता है। यही बात छात्रों पर लागू होती है। जो बच्चा कक्षा में आलस करता है, वही फुटबॉल के खेल के दौरान मीलों दौड़ लगाता है।

आलू बोने या प्याज़ की खरपतवार निकालते समय किसी भी सत्रह साल के लड़के की मदद मुझे नहीं मिलती। जबकि यही लड़के किसी गाड़ी के इंजन से छेड़छाड़ करने, गाड़ी धोने या रेडियो बनाने में घण्टों बिता देते हैं। इस स्थिति को स्वीकारने में मुझे लम्बा समय लगा। मुझे यह सच्चाई उस वक़्त समझ आने लगी जब मैं स्कॉटलैण्ड में अपने भाई के बगीचे में खुदाई कर रहा था। मुझे काम में मज़ा नहीं आ रहा था। मुझे अचानक समझ आया कि गड़बड़ दरअसल यह है कि मैं उस बाग में खुदाई कर रहा हूँ जिसका मेरे लिए कोई अर्थ नहीं है। ज़ाहिर है लड़कों के लिए मेरा बाग अर्थहीन है, जबकि उनकी साइकिलें और रेडियो उन्हें बेहद सार्थक लगते हैं। वास्तविक परोपकारिता उनमें पनपे, इसमें लम्बा समय लगता है और तब भी स्वार्थ का पुट उसमें से पूरी तरह जाता नहीं है।

काम के प्रति छोटे बच्चों का नज़रिया, किशोर बच्चों से फर्क होता है। तीन से आठ साल के समरहिल के छात्र-छात्राएँ दारा सिंह की तरह काम करते हैं। सीमेंट मिलाना, रेत ढोकर लाना, ईंटें हटाना। वे यह सब इनाम की इच्छा के बिना करते हैं। वे स्वयं को वयस्कों के साथ जोड़कर देखते हैं और अपनी कल्पनाओं को वास्तविक रूप में साकार करते हैं। पर आठ-नौ साल से उन्नीस-बीस साल की उम्र तक उन्हें उबाऊ शारीरिक श्रम रास नहीं आता। यह बात अमूमन सभी बच्चों के लिए सच है। फिर भी कुछेक बच्चे बचपन से ही ताउम्र काम करने वाले बने रहते हैं।

सच यह भी है कि हम वयस्क लोग बच्चों का अक्सर शोषण भी करते हैं। “मेरियाँन दौड़कर यह चिट्ठी डाक के डिब्बे में डाल आओ।” तो बच्चों को इस्तेमाल होना पसन्द नहीं आता। एक औसत बच्चा अस्पष्ट रूप से यह बात समझता भी है कि उसके माता-पिता उसके किसी प्रयास के बिना भी उसकी देखभाल करते हैं, उसे खिलाते-पहनाते हैं। उसे लगता है कि ऐसी देखभाल पाना उसका स्वाभाविक अधिकार है। पर साथ ही उसे यह भी समझ आता है कि ऐसे सैकड़ों छोटे-बड़े उबाऊ कामों की अपेक्षा उससे रखी जाती है और उसे करने भी पड़ते हैं, जिनसे उसके माता-पिता खुद बचना चाहते हैं।

मैंने एक बार अमेरिका के एक स्कूल के बारे में पढ़ा जिसका भवन छात्रों ने खुद बनाया था। मैं सोचा करता था कि यही आदर्श स्थिति है। पर दरअसल ऐसा है नहीं। अगर बच्चे अपना स्कूल भवन खुद बनाते हैं तो यकीनन कोई सद्भावपूर्ण सत्ता उनके सर पर खड़ी उन्हें जोश दिला रही होगी। जैसे ही सत्ता हटा ली जाएगी बच्चे स्कूल भवन का काम बन्द कर देंगे।

मेरी व्यक्तिगत राय यह है कि कोई भी समझदार सभ्यता बच्चों से अठारह साल की उम्र के पहले काम करने की अपेक्षा नहीं रखती। अठारह वर्ष के पहले अधिकांश लड़के-लड़कियाँ खूब काम करेंगे बशर्ते यह काम उनके लिए खेल समान हो और उनके माता-पिता की नज़र में आर्थिक रूप से बेकार भी। बच्चों को परीक्षाओं के लिए जितनी मेहनत करनी पड़ती है उसकी कल्पना ही मुझे उदास कर देती है। मैंने सुना है कि दूसरे विश्वयुद्ध के पहले बुडापेस्ट में आधे छात्र-छात्राएँ अपनी मैट्रिक की परीक्षा के बाद शारीरिक या मानसिक रूप से टूट जाते थे।

हमारे पुराने छात्र-छात्राओं द्वारा स्कूल से निकलने के बाद ज़िम्मेदार पदों पर बेहतरीन प्रदर्शन का कारण यह है कि वे अपने आत्मकेन्द्रित काल्पनिक चरण को समरहिल में भरपूर जी पाते हैं। नवयुवक और नवयुवतियों के रूप में अपने जीवन की वास्तविकता का सामना, बचपन को फिर से जीने की अवचेतन चाहना के बिना कर पाते हैं।

खेल

समरहिल को एक ऐसे स्कूल की परिभाषा दी जा सकती है जिसमें खेल सबसे महत्वपूर्ण गतिविधि है। बच्चे और बिलौटियाँ क्यों खेलते हैं, यह मुझे पता नहीं। मुझे लगता है कि बात ऊर्जा की है।

यहाँ जब मैं खेल की बात करता हूँ तो कसरती अखाड़ों या व्यवस्थित खेलकूद के बारे में नहीं सोच रहा होता। मैं कल्पना के स्तर के खेल के बारे में सोच रहा होता हूँ। व्यवस्थित खेलकूद में कौशल, स्पर्धा और टोली में काम शामिल होता है। पर बच्चों के खेल में अमूमन किसी कौशल की ज़रूरत नहीं होती। वहाँ न स्पर्धा होती है और न ही टीम में काम करने की ज़रूरत पड़ती है। छोटे बच्चे डाकू-डाकू का खेल खेलते हैं जिसमें गोलियाँ दागी जाती हैं, तलवारें खनकती हैं। चलचित्रों का युग शुरू हुआ उसके बहुत पहले से बच्चे डाकूओं का खेल खेलते आए हैं। कहानियाँ और फिल्में इस खेल को कोई दिशा ज़रूर दे सकते हैं पर उसका मूल तत्व सभी प्रजातियों के बच्चों की आत्मा में बसता है।

समरहिल में छह साल के बच्चे पूरे दिन खेलते हैं, अपनी कल्पना जगत के खेल। छोटे बच्चों के लिए वास्तविकता और काल्पनिक जगत काफी पास-पास होते हैं। जब कोई दस साल का लड़का भूत बनकर डराता है तो नन्हे-मुन्ने खुशी के मारे चीख पड़ते हैं। उन्हें पता है कि सामने सिर्फ़ टॉमी है, उसने उनके सामने ही तो सफ़ेद चादर ढँकी है। फिर भी जब वह उनकी ओर बढ़ने लगता है तो हरेक बच्चा डर से चिल्लाने लगता है।

छोटे बच्चे काल्पनिक जीवन जीते हैं और उसी कल्पना जगत को अपने कार्यों में उतारते हैं। आठ से अठारह साल के लड़के गिरोह बनाने का खेल खेलते हैं। वे लोगों के सिर काटते हैं या फिर अपने लकड़ी के हवाई जहाज़ों में बादलों से भी ऊपर उड़ते हैं। छोटी लड़कियाँ भी गिरोह बनाने के उस चरण से गुज़रती हैं, पर उसमें बन्दूकें या तलवारें नहीं घुसतीं। मेरी के गिरोह को नैली के गिरोह से आपत्ति होती है और दोनों में कहा-सुनी होती है, कठोर शब्द कहे जाते हैं। लड़कों के गिरोह बस खेल-खेल के दुश्मन होते हैं। यही कारण है कि छोटी लड़कियों की बनिस्बत छोटे लड़कों के साथ जीना आसान होता है।

काल्पनिक जगत की सीमा कहाँ शुरू और कहाँ खत्म होती है, यह मैं आज तक तलाश नहीं सका हूँ। जब कोई बच्चा किसी गुड़िया के लिए खिलौने की तश्तरी में खाना लाता है तो क्या वह उस पल यह मानता है कि गुड़िया जीवित है? क्या लकड़ी का घोड़ा सच में एक घोड़ा है? जब कोई लड़का पीछे से “हाथ ऊपर उठाओ” कहकर गोली दागता है, तो क्या उसे लगता है कि उसके हाथ में असली बन्दूक है? मैं सोचता हूँ कि बच्चे अपने खिलौनों को असली ही मानते हैं, जब तक कोई असंवेदनशील वयस्क खेल में टाँग अड़ा कर उन्हें काल्पनिक जगत की याद नहीं दिला देता। वे तब धपाक से धरती पर आ गिरते हैं। कोई भी संवेदनशील अभिभावक बच्चों के काल्पनिक जगत को भंग नहीं करता।

लड़के आम तौर पर लड़कियों के साथ नहीं खेलते। वे डाकू-डाकू खेलते हैं, पकड़म-पकड़ाई खेलते हैं, वे पेड़ों पर घर बनाते हैं, गड्डे और खाइयाँ खोदते हैं।

लड़कियाँ व्यवस्थित खेल नहीं खेलतीं। टीचरजी या डॉक्टर बनने के खेलों की परिपाटी मुक्त बच्चों में नहीं मिलती, क्योंकि सत्तावान लोगों की नकल करने की उन्हें ज़रूरत नहीं लगती। छोटी लड़कियाँ गुड़ियों से खेलती हैं, पर बड़ी लड़कियों को दूसरे लोगों से सम्पर्क करने में बेहद रस आता है। उन्हें चीज़ों से खेलना पसन्द नहीं आता।

हमारी हॉकी की टीम मिश्रित होती है, ताश और अन्दर खेले जाने वाले दूसरे खेल भी लड़के लड़कियाँ साथ-साथ खेलते हैं।

बच्चों को शोर और मिट्टी पसन्द है। वे धड़धड़ाते हुए सीढ़ियाँ चढ़ते हैं। वे

चिल्लाते भी बहुत हैं। उन्हें सामने धरे फर्नीचर का ध्यान तक नहीं रहता, अगर वे पकड़म-पकड़ाई खेल रहे हों, और रास्ते में चीनी मिट्टी के गुलदान धरे हों, तो वे उन्हें भी रौंद डालें।

अक्सर माताएँ अपने बच्चों से खेलती ही नहीं हैं। उन्हें लगता है कि उनके पालने में एक नरम मुलायम-सा खिलौना रख देने से दो-एक घण्टे की छुट्टी हो जाती है। वे भूल जाती हैं कि बच्चों को गुदगुदाना, चिपटाना, दुलराना पसन्द है।

ज़ाहिर है कि बाल्यावस्था खेल की अवस्था है। पर हम सभी वयस्कों की अमूमन प्रतिक्रिया क्या रहती है? हम इसकी *उपेक्षा* करते हैं। हम इस बारे में सब कुछ भूल जाते हैं - क्योंकि हम इसे समय की बर्बादी मान बैठते हैं। सो हम बड़े-बड़े शहरी स्कूल खड़े करते हैं। उनमें ढेरों कमरे और महँगी-महँगी शिक्षण सामग्री इकट्ठा करते हैं। पर खेलने की प्रवृत्ति के लिए हम एक छोटी-सी पक्की जगह भर उपलब्ध करवाते हैं।

शायद ईमानदारी से यह दावा भी किया जा सकता है कि हमारी सभ्यता की कई बुराइयाँ इस कारण हैं कि बच्चे पर्याप्त खेल नहीं सकते। दूसरे शब्दों में कहें तो हर बच्चे को मानो अलाव में पकाकर वयस्क होने की उम्र के काफी पहले ही वयस्क बना डाला जाता है।

खेल के प्रति वयस्कों के नज़रिए में काफी मनमानापन होता है। हम बच्चों के लिए टाइम टेबल बनाते हैं, सुबह नौ से दोपहर बारह बजे तक पढ़ाई, तब एक घण्टे की खेलने की छुट्टी, फिर तीन बजे तक वापस पढ़ाई। अगर किसी आज़ाद बच्चे से यही टाइम टेबल बनाने को कहाँ जाए तो वह खेल के घण्टे ज़्यादा रखे और पढ़ाई के केवल कुछ ही।

बच्चों के खेल के प्रति वयस्कों के विरोध की जड़ में है क्या? मुझसे सैंकड़ों बार पूछा जाता है, “अगर मेरा बेटा दिन भर खेलेगा तो वह कुछ सीखेगा कैसे? वह परीक्षाएँ कैसे पास करेगा?” मेरा उत्तर कम ही लोग स्वीकार पाते हैं। “अगर आपका बच्चा जी भरकर खेलता है, तो वह दो साल की सघन पढ़ाई से ही कॉलेज दाखिले के इम्तहान पास कर सकता है। जबकि जिन स्कूलों में खेल के घण्टे को ही हटा दिया जाता है, वहाँ बच्चों को इसी काम में पाँच, छह या सात साल लगते हैं।”

पर मुझे हमेशा इसके साथ यह भी जोड़ना पड़ता है, “यह तब, जब वह खुद अपनी मर्ज़ी से परीक्षाएँ पास करना चाहे।” सम्भव है कि वह बैले नर्तक या रेडियो इंजीनियर बनाना चाहे। या ड्रेस डिज़ाइनर या बच्चों की नर्स बनना चाहे। जी हाँ, बच्चों के भविष्य की चिन्ता के कारण, वयस्क उनके खेलने के अधिकार को बाधित

करते हैं। पर इसमें और भी बातें जुड़ी हैं। खेल को लेकर कुछ अस्पष्ट नैतिक नापसन्दगी भी हम दर्शाते हैं। हम अक्सर किशोर-किशोरियों को कहते हैं, “बच्चों की-सी हरकतें न करो”।

जो माता-पिता बचपन की ललक भूल जाते हैं, खेलना और कल्पनाएँ करना भूल जाते हैं, वे अच्छे अभिभावक नहीं बन पाते। जब बच्चा अपने खेलने की क्षमता सीखने बैठता है तो वह मानसिक रूप से मर चुका होता है। वह उन बच्चों के लिए भी खतरनाक होता है जिनके सम्पर्क में वह आता है।

इज़राइल के शिक्षकों ने मुझे अपने सामुदायिक केन्द्रों के बारे में बताया है। मुझे बताया गया कि वहाँ स्कूल स्थानीय समुदाय का हिस्सा होते हैं जिनकी प्राथमिक ज़रूरत है कठोर शारीरिक श्रम। एक शिक्षक ने बताया कि वहाँ दस साल के बच्चों को अगर सज़ा के बतौर बाग में काम न करने दिया जाए तो वे रोते हैं। अगर समरहिल में किसी बच्चे को आलू खोदने से रोका जाए और वह रो पड़े तो मैं ज़रूर यह सोचने लगूँगा कि कहीं बच्चा मानसिक रूप से अस्वस्थ तो नहीं है। बचपन का मतलब है खिलंदड़ापन। जो सामुदायिक व्यवस्था इस सच्चाई की उपेक्षा करती है उसकी शिक्षा-दीक्षा भी गलत है। मुझे लगता है कि इज़राइल की व्यवस्था आर्थिक ज़रूरत की वेदी पर बाल जीवन की बलि चढ़ाती है। यह ज़रूरत हो सकती है, पर मैं ऐसी प्रणाली को आदर्श सामुदायिक जीवन का नाम नहीं दे सकता।

जिन बच्चों को इच्छानुसार खेलने नहीं दिया जाता, उनको जो हानि होती है उसे जानना रोचक होने के बावजूद बेहद कठिन है। व्यावसायिक फुटबॉल खिलाड़ियों को खेलते देखने वाली भीड़ को देख मुझे अक्सर लगता है कि लोग खुद को खिलाड़ियों की जगह मान, कहीं बचपन की बाधित रुचि को फिर से जीने की चेष्टा तो नहीं कर रहे। समरहिल से निकले अधिकांश बच्चे फुटबॉल के मैच नहीं देखते, उसकी तड़क-भड़क में उनकी रुचि नहीं होती। मुझे लगता है उनमें ऐसे बच्चे भी कम ही होंगे जो जुलूस देखने जाएँ। आखिर जुलूस में भी तो बचकानापन होता है। उसके चटकीले रंग, उसकी औपचारिकताएँ, उसकी धीमी गति, सभी कुछ खिलौनों की दुनिया और सजी-धजी गुड़ियों का आभास देती हैं। शायद यही कारण हो कि पुरुषों की तुलना में महिलाओं को जुलूस और लवाज़में इतने पसन्द आते हैं। जैसे-जैसे लोगों की उम्र बढ़ती है, वे सुसंस्कृत होते चलते हैं, उन्हें तामझाम आकर्षित नहीं करता। मुझे शक है कि सेना के उच्च अधिकारी, राजनीतिज्ञों और राजनायकों को राजकीय जुलूसों में ऊब से अधिक कुछ हासिल होता होगा।

कुछ प्रमाण इस तथ्य के भी हैं कि जिन बच्चों को आज्ञादी से पाला-पोसा जाता है, जिन्हें खूब खेलने का समय मिलता है, वे भीड़ के पीछे चलने वाले नहीं बनते।

समरहिल के पुराने छात्र-छात्राओं में केवल वे ही भीड़ में शामिल हो, नारे लगाते हैं, जिनके माता-पिता की पृष्ठभूमि साम्यवादी है।

नाटक

सर्दियों में समरहिल में इतवार की शाम अभिनय की होती है। नाटकों में उपस्थिति हमेशा अच्छी रहती है। मैंने लगातार छह इतवारों के नाटक कार्यक्रम देखे हैं। पर नाटकों की बाढ़ के बाद ऐसा भी होता है कि कुछ सप्ताह पूरी शान्ति रहे।

दर्शकों की दृष्टि मीनमेख निकालने वाली नहीं होती। वे शिष्टाचार बरतते हैं। लंदन के दर्शकों की तुलना में कहीं अच्छा व्यवहार हमारे बच्चे करते हैं। ताने-फब्तियाँ कसना, पैर पटकना या सीटियाँ बजाना आदि बिरले ही होता है।

हमारा पुराना स्क्वॉश का मैदान ही नाट्यशाला में बदल दिया गया है। उसमें तकरीबन सौ लोग बैठ सकते हैं। उसका मंच बक्सों से बना है। बक्सों को जहाँ मर्ज़ी वहाँ रखा जा सकता है। यानी उन बक्सों को सीढ़ीनुमा आकार या सपाट मंच का रूप बच्चे दे सकते हैं। प्रकाश की व्यवस्था बेहतरीन है। प्रकाश कम करने और स्पॉटलाईट की अच्छी व्यवस्था है। मंचसज्जा की चीज़ें नहीं हैं, सिर्फ पर्दा है। जब नाटक में कहा जाता है, *गाँववासी झाड़ियों के बीच से घुसते हैं* तो अभिनेता पर्दे को एक तरफ से धकिया देते हैं।

हमारी परम्परा है कि हम समरहिल में रचे गए नाटक ही खेलते हैं। एक अलिखित नियम यह भी है कि किसी शिक्षक का लिखा नाटक तब ही खेला जाएगा जब बच्चों के लिखे नाटकों की कमी हो। अभिनेता स्वयं अपनी पोशाकें बनाते हैं। अकसर वे बेहद अच्छी होती हैं। हमारे यह नाटक प्रहसन या स्वांग अधिक होते हैं, दुखान्त कम। पर जब भी दुखान्त नाटक खेले जाते हैं, वे अच्छे होते हैं, कभी-कभार तो बेहद खूबसूरत अदाकारी के साथ।

लड़कों की तुलना में लड़कियाँ अधिक नाटक लिखती हैं। छोटे लड़के अपने नाटक खुद ही तैयार करते हैं। पर उसमें पात्रों के संवाद नहीं लिखे होते। और उसकी ज़रूरत भी आखिर क्या है। क्योंकि हरेक चरित्र “हाथ ऊपर करो!” ही तो कहता है। इन नाटकों में हमेशा लाशों के ढेर पर पर्दा गिरता है क्योंकि छोटे लड़के अमूमन समझौता-पसन्द नहीं होते और विरोधियों का काम तमाम करना ही पसन्द करते हैं।

तेरह वर्ष की डेफ्नी शरलॉक होम्स के नाटक बनाया करती थी। याद आता है कि उनमें से एक में हवलदार सार्जेन्ट की बीबी को भगा ले गया था। सार्जेन्ट ने तब

एक निजी जासूस और 'माय डियर वॉटसन' की मदद से अपनी पत्नी को ढूँढा था। तब उस नाटक में एक आश्चर्यजनक दृश्य नज़र आया। हवलदार सोफे पर दगाबाज़ बीबी के साथ बैठा था, उनके चारों ओर औरतें नाच रहीं थीं। और हवलदार अपनी वर्दी तक में नहीं था। डेप्टी अपने नाटकों में 'फर्रटेदार जीवन' को उतारने की कोशिश करती थी।

चौदह-एक साल की लड़कियाँ कभी-कभार छन्द में नाटक लिखा करती थीं। अक्सर वे काफी अच्छे भी होते थे। ज़ाहिर है कि सभी शिक्षक और बच्चे नाटक नहीं लिखते।

दूसरों के नाटक चुराने की प्रवृत्ति से सब परहेज़ करते हैं। कुछ समय पहले अचानक नाटक कार्यक्रम से एक नाटक निकाला गया। जल्दबाज़ी में मुझे ही एक नाटक तैयार करना था। मैंने डब्ल्यू.डब्ल्यू. जेकब की कहानी को आधार बनाकर एक नाटक लिखा। हर ओर "नकलची! चोर!" का शोर मच गया।

समरहिल के बच्चों को किसी कहानी का नाटक बनाना पसन्द नहीं। न ही वे दूसरे स्कूलों में खेले जाने वाले नाटक पसन्द करते हैं। हमारे बच्चे कभी शेक्सपीयर के नाटक नहीं करते। पर कभी-कभार मैं शेक्सपीयर की एकांकी लिख डालता हूँ जैसे अमरीकी गुण्डागर्दी के माहौल में जूलियस सीज़र। वहाँ भाषा मिश्रित होती है। एक ओर शेक्सपीयर के ज़माने की अँग्रेज़ी तो दूसरी ओर जासूसी पत्रिकाओं की भाषा।

मेरी ने उस वक़्त तहलका मचा दिया जब उसने किलओपेट्रा के किरदार में मंच पर मौजूद हरेक पात्र की हत्या कर दी। तब छुरी पर लिखा 'स्टेनलेस स्टील' पढ़ा और उसे अपनी छाती में उतार लिया। हमारे छात्र-छात्राओं की अभिनय क्षमता काफी ऊँची है। वे मंच पर आने से नहीं डरते। छोटे बच्चों को देखना बड़ा आनन्द देता है। वे पूरी ईमानदारी से अपने पात्र चरित्र जीते हैं। लड़कियाँ लड़कों से अधिक आसानी से अभिनय करती हैं। दस साल से छोटे लड़के अपनी गुण्डाटोली के नाटकों के अलावा दूसरे नाटकों में भागीदारी नहीं करते। और कुछ अभिनय का कोई मौका नहीं पाते, न पाना ही चाहते हैं।

हमारे लम्बे अनुभव से हमें पता चला है कि सबसे खराब अभिनेता वे होते हैं जो वास्तविक जीवन में अभिनय करते हैं। ऐसे बच्चे मंच पर भी खुद से और अपने संकोच से दूर नहीं हो पाते। शायद यहाँ संकोच का प्रयोग सही भी नहीं हो, क्योंकि दरअसल वे इस बात के प्रति सचेत होते हैं कि देखने वाले उनके प्रति सचेत हैं।

अभिनय शिक्षा का एक ज़रूरी हिस्सा है। वैसे यह मूलतः आत्म-प्रदर्शन ही होता है। पर समरहिल में जब अभिनय केवल आत्म-प्रदर्शन बन जाता है तो अभिनेता/अभिनेत्री को कोई प्रशंसा नहीं मिलती।

किसी भी अभिनेता में दूसरों से एकात्म स्थापित करने की ताकत होनी चाहिए। वयस्कों में यह एकात्मकता हमेशा सायास होती है। उन्हें हमेशा यह अहसास होता है कि वे नाटक कर रहे हैं। पर बच्चों के बारे में मुझे ऐसा नहीं लगता। जब भी कोई बच्चा पात्र के रूप में मंच पर इस सवाल के साथ घुसता, “तुम कौन हो?” तो वह यह कहने के बदले, “मैं यहाँ का भूत हूँ !” कह सकता है, “मैं पीटर हूँ।”

छोटे बच्चों के लिए लिखे गए नाटक में एक दृश्य था, सब भोजन कर रहे थे। खाने-पीने की चीज़ें मंच पर रखी थीं। नेपथ्य में याद दिलाने वाला जो प्रॉम्प्टर था वह बड़ी मुश्किल से उन अभिनेताओं को अगले दृश्य की ओर बढ़ा सका। बच्चे दर्शकों को भूलकर प्रेम से खाने में जुट गए थे।

अभिनय आत्मविश्वास बढ़ाने का एक तरीका है। पर कुछ बच्चे जो कभी अभिनय नहीं करते बताते हैं कि उन्हें नाटक देखना इसलिए पसन्द नहीं है क्योंकि वह उनके मन में हीन भावना जगाता है।

इस समस्या का कोई समाधान मैं तलाश नहीं पाया हूँ। अमूमन ऐसे बच्चे अपने लिए कोई ऐसी चीज़ ढूँढ लेते हैं जिसमें वे अपनी श्रेष्ठता सिद्ध कर पाएँ। पर कोई ऐसी लड़की भी हो सकती है जो अभिनय करना पसन्द करती हो पर कर नहीं पाती हो। ऐसी लड़की को हमेशा नाटक में शामिल किया जाता है। यह हमारे स्कूल में व्याप्त शिष्टाचार पर टिप्पणी है।

तेरह-चौदह साल के लड़के-लड़कियाँ ऐसा कोई पात्र बनना पसन्द नहीं करते जिसे प्रेम दृश्य करने हों। पर छोटे बच्चे यह बड़ी सहजता और खुशी के साथ करते हैं। पन्द्रह साल से बड़े बच्चे प्रेम पात्र को हास्य रूप में खेलना पसन्द करते हैं। एक-दो बड़े बच्चे ही ऐसे होते हैं जो गम्भीर प्रेम पात्र का चरित्र लेते हैं। प्रेम सम्बंधी चरित्रों को जीवन्त बनाने में प्रेम का अनुभव आवश्यक होता है। पर जिन बच्चों ने वास्तविक जीवन में कभी दुख नहीं देखा हो वे भी दुख भरे चरित्रों में अच्छा अभिनय कर लेते हैं। मैंने वर्जिनिया को दुखद चरित्र का अभ्यास करते समय फूट-फूटकर रोते देखा है। दरअसल बच्चे कल्पना में दुख और पीड़ा से परिचित होते हैं। सच यह है कि बच्चों के कल्पना जगत में मृत्यु काफी जल्दी ही उभरती है।

बाल-नाटक उनके स्तर के ही होने चाहिए। बच्चों से कालजयी नाटक करवाना, जो उनके वास्तविक कल्पना जगत से दूर हों, भूल है। उनकी पठन सामग्री की तरह ही उनके नाटक भी उनके ही स्तर के होने चाहिए। समरहिल के बच्चे बिरले ही स्कॉट, डिकन्स या थैकरे की रचनाएँ पढ़ते हैं, क्योंकि आज के बच्चे चलचित्र युग के बच्चे हैं। जब बच्चा सिनेमा जाता है तो सवा घण्टे में *वेस्टवर्ल्ड हो* जैसी लम्बी कहानी का सार पा लेता है। इसी कहानी को पढ़ने में उसे दिनों दिन लग सकते हैं। और फिर फिल्म देखने से वह लोगों या दृश्यों के उबाऊ वर्णन से भी

बच जाता है। यही कारण है कि बच्चे नाटक में एलिसनोर की कहानी नहीं चाहते, वे ऐसी कहानी पसन्द करते हैं जो उनके परिचित वातावरण की हो।

यद्यपि समरहिल के बच्चे अधिकतर अपने लिखे नाटक ही खेलते हैं, फिर भी मौका पड़ने पर उम्दा नाटकों का भी उत्साह से स्वागत करते हैं। एक सर्दियों में मैं बड़े बच्चों को सप्ताह में एक बार नाटक पढ़कर सुनाता रहा। मैंने बेरी, इब्सन, स्ट्रिन्डबर्ग, चेखव, शाँ और गैल्सवर्दी के अलावा *द सिल्वर कॉर्ड* तथा *द वॉर्टेक्स* जैसे आधुनिक नाटक भी सुनाए। हमारे सबसे अच्छे अभिनेताओं और अभिनेत्रियों को इब्सन पसन्द आया।

बड़े बच्चे मंच तकनीकों में रुचि लेते हैं। उनके प्रति इन बच्चों का दृष्टिकोण मौलिक होता है। नाटक लेखन की एक पुरानी परम्परा यह रही है कि कोई भी पात्र बिना स्पष्टीकरण दिए मंच नहीं छोड़ता। जब नाटककार चाहता है कि पिता मंच से हटे ताकि माँ और बेटी कह सकें कि वह एक खूसट बुड़्ढा है तो पिता उठकर कहता है, “देखूँ बागवान ने गोभियाँ बोई या नहीं,” और तब मंच से हट जाता है। पर हमारे समरहिल नाटककार प्रत्यक्ष तकनीक अपनाते हैं। एक लड़की ने मुझे कहा, “वास्तविक जीवन में तो हम क्यों जा रहे हैं, यह बताए बिना ही कमरे से बाहर निकल जाते हैं।” सच यही हम करते हैं, समरहिल के मंच में भी यही किया जाता है।

समरहिल की विशेषता है स्वतःस्फूर्त अभिनय जो नाट्यकला की एक विशेष विधा है। मैं अभिनय के कुछ अभ्यास उन्हें देता हूँ जैसे - *एक काल्पनिक ओवरकोट पहनो, उसे फिर से उतारो, खूँटी पर टाँगो। फूलों का गुच्छा उठाओ, उसका जो काँटा तुम्हें चुभा उसे निकालो। एक तार खोलो जिसमें लिखा है कि तुम्हारे पिता या माता गुज़र गए हैं। रेल्वे स्टेशन के रेस्तराँ में हड़बड़ी में खाना खाओ क्योंकि तुम्हें चिन्ता है कि कहीं ट्रेन तुम्हारे बिना ही चलती न बने।*

कई बार अभिनय में ‘संवाद’ भी होते हैं। जैसे मैं टेबल कुर्सी पर बैठा घोषणा करता हूँ कि मैं हैरिच में बैठा पासपोर्ट अधिकारी हूँ। हरेक को आकर अपना काल्पनिक पासपोर्ट दिखाना है और मेरे सवालों का जवाब देना है। इसमें सबको खूब मज़ा आता है। कभी मैं एक फिल्म निर्माता बन बैठता हूँ जो अभिनेता-अभिनेत्रियों को तलाश रहा हो या एक निजी सचिव के लिए साक्षात्कार कर रहा हो। एक बार मैं ऐसा व्यक्ति बना जिसने आशुलिपिक तलाशने का विज्ञापन निकाला हो। किसी भी बच्चे को आशुलिपिक का अर्थ पता नहीं था। एक लड़की ने ऐसा अभिनय किया मानो वह प्रसाधक हो, इससे सबका खूब मनोरंजन हुआ।

स्वतःस्फूर्त अभिनय स्कूली नाटकों का रचनात्मक पक्ष है, उसका महत्वपूर्ण पक्ष है। समरहिल में हम किसी और चीज़ की बनिस्बत रचनात्मकता के लिए ही नाटक

खेलते हैं। नाटकों में अभिनय तो कोई भी कर सकता है पर सब नाटक लिख नहीं सकते। ज़ाहिर है कि बच्चों को यह अहसास तो होता ही होगा, फिर चाहे यह अहसास अस्पष्ट ही क्यों न हो, कि दोहराने या नकल करने के बजाए खुद के लिखे मौलिक नाटकों को खेलने की परम्परा ही रचनात्मकता को प्रोत्साहित करती है।

नृत्य व संगीत

चलो नाचें, पर कुछ नियम के साथ। आश्चर्यजनक बात यह है कि एक भीड़ उन नियमों को भीड़ के रूप में मान लेगी, फिर चाहे उस भीड़ को बनाने वाले लोग व्यक्तिगत स्तर पर उन नियमों से घृणा ही क्यों न करते हों।

मेरे लिए लंदन का बॉलरूम इंग्लैण्ड का प्रतीक है। नृत्य जो एक व्यक्तिगत रचनात्मक सुख है अकड़कर चलने में बदलकर रह जाता है। हर जोड़ा दूसरे जोड़ों की तरह नाचता है। भीड़ की रूढ़िवादिता अधिकांश नर्तकों को मौलिक नहीं बनने देती। यद्यपि नृत्य का आनन्द कुछ नया ईजाद करने का आनन्द है। जब आविष्कार नृत्य से बाहर छोड़ दिया जाता है तो नृत्य मशीनी और उबाऊ हो जाता है। हमारा नृत्य इंग्लैण्डवासियों के मन में बसी भावना व मौलिकता के प्रति डर को अभिव्यक्त करता है। अगर नृत्य के आनन्द में भी आज्ञादी की कोई सम्भावना नहीं हो, तो हमें वह जीवन के अधिक गम्भीर पक्षों में भला कैसे मिलेगी? अगर व्यक्ति खुद अपने नाच में पद-संचालन ईजाद नहीं कर सकता तो ज़ाहिर है कि वह अपने धर्म, शिक्षा या राजनीति के चरणों का आविष्कार करने की हिम्मत करे तो समाज भला उसे बर्दाश्त कैसे करेगा?

समरहिल के सभी कार्यक्रमों में नृत्य शामिल होता है। इनकी व्यवस्था और प्रदर्शन हमेशा लड़कियाँ ही करती हैं और अच्छी तरह से करती हैं। वे इसमें शास्त्रीय संगीत काम में नहीं लेतीं। वे हमेशा जैज़ ही चुनती हैं। हमारे यहाँ एक बूले नृत्य हुआ था जो गरशिवन के *एन अमेरिकन इन पैरिस* के संगीत पर आधारित था। मैंने एक कहानी लिखी थी, जिसे लड़कियों ने नाच में रूपान्तरित किया था। सच कहूँ तो मैंने लंदन के मंचों पर इससे कहीं खराब नृत्य देखे हैं।

तकरीबन हर शाम हमारा बड़ा कमरा बच्चों से भर जाता है। हम रिकॉर्ड बजाते हैं और यही बहस छिड़ जाती है। बच्चों को ड्यूक एलिंग्टन और एल्विस प्रेसली पसन्द आता है और मुझे उससे घृणा है। मुझे रैवल, स्ट्रेविन्स्की और गरशिवन पसन्द है। जब मैं जैज़ से परेशान हो जाता हूँ तो मैं यह नियम लागू कर देता हूँ कि क्योंकि कमरा मेरा है, वही संगीत बजेगा जो मुझे पसन्द है।

रोज़नकैविलियर तिकड़ी या माइस्टरसिंगर चौकड़ी कमरे को अक्सर खाली कर देता। पर कुछ ऐसे बच्चे भी हैं जिन्हें शास्त्रीय संगीत या चित्रकला पसन्द हो। हम उनकी अभिरुचि को परिष्कृत करने की कोशिश भी नहीं करते।

दरअसल जीवन के सुख पर इस बात का कोई असर नहीं पड़ता कि किसी को बीथोविन पसन्द आता है या आधुनिक जैज़। अगर स्कूल बीथोविन को छोड़ अपने पाठ्यक्रम में जैज़ अपना लें तो शायद उन्हें अधिक सफलता मिले। समरहिल के तीन बच्चे जैज़ बैण्ड से प्रभावित हो साज़ों का अभ्यास करने लगे। दो ने क्लैरिनेट और एक ने ट्रम्पेट खरीदा। स्कूल छोड़ने के बाद उन्हें संगीत की रॉयल एकेडमी में दाखिला मिला। आज वे तीनों ही ऐसे ऑर्केस्ट्रा में शामिल हैं जो केवल शास्त्रीय संगीत बजाते हैं। मैं यह मानता हूँ कि उनकी संगीत में रुचि इसलिए पनप सकी क्योंकि उन्हें समरहिल में ड्यूक एलिंग्टन के साथ बाख या जो संगीतकार उन्हें पसन्द आता, उसे भी सुनने की आज्ञादी मिल सकी।

खेलकूद

अधिकांश स्कूलों में खेलकूद अनिवार्य होता है। यहाँ तक कि मैच देखना भी अनिवार्य होता है। समरहिल में पढ़ाई की तरह ही खेलकूद भी ऐच्छिक हैं।

एक बच्चा स्कूल में दस साल रहा, उसने एक खेल नहीं खेला, न उससे कभी खेलने को कहा गया। पर सामान्यतः बच्चों को खेलकूद बेहद पसन्द हैं। छोटे बच्चे व्यवस्थित खेल नहीं खेलते। वे तो डाकू-डाकू का खेल खेलते हैं। वे पेड़ों पर झोपड़ियाँ बनाते हैं और वह सब करते हैं जो बच्चे आम तौर पर करते हैं। जब तक उनके मन में सहकारिता की भावना न पनप जाए, व्यवस्थित खेल आयोजित नहीं किए जाने चाहिए। समय आने पर व्यवस्थित खेलकूद उन्हें स्वाभाविक रूप से आ जाते हैं।

समरहिल में सर्दियों में हॉकी और गर्मियों में टेनिस खेला जाता है। जोड़े में टेनिस खेलने में जो आपसी समझ और काम की ज़रूरत होती है वह बच्चों के लिए कठिन होता है। हॉकी में पूरी टोली एक साथ खेलती है, यह तो वे सहज ही समझते हैं। पर टेनिस में दोनों जोड़ीदार एक इकाई बनने के बदले अपना-अपना खेल खेलते हैं। सत्रह साल के आस-पास बच्चों को टोली में खेलना अधिक आसानी से समझ आता है।

तैराकी सभी उम्र के बच्चों में लोकप्रिय है। साइजवैल के पास जो समुद्रीतट है वह बच्चों के लिए सही नहीं है, क्योंकि वह हमेशा ज्वार के कारण भरा रहता है। लम्बे

पसरे रेतीले तट बच्चों को बेहद पसन्द हैं, पर ऐसे तट हमारी तरफ हैं ही नहीं। हमारे स्कूल में कोई कृत्रिम जिम्नैस्टिक्स नहीं है, न ही मैं उसे आवश्यक मानता हूँ। बच्चों को जितनी कसरत की ज़रूरत है, वह वे अपने खेलों में पा लेते हैं। तैरना, नाचना, साइकिल चलाना। मुझे इस बात पर भी शक है कि आज़ाद बच्चे जिम्नैस्टिक्स की कक्षा में जाना पसन्द करेंगे। हमारे अन्दरूनी खेल हैं - टेबल टेनिस, शतरंज और ताश।

छोटे बच्चों के लिए उथला ताल है, रेत का ढेर है, सी-सॉ हैं और हैं झूले। किसी भी गर्म दिन ढेरों बच्चे रेत के ढेर पर खेलते मिलते हैं। उनकी हमेशा यह शिकायत रहती है कि बड़े बच्चे भी उनके रेत के टीले का इस्तेमाल करते हैं। लगता है हमें बड़े बच्चों के लिए भी रेत का अलग ढेर बनाना होगा। बच्चों के जीवन में रेत और मिट्टी का युग हमने जितना सोचा था उससे अधिक समय तक चलता है।

खेलकूद के लिए दिए जाने वाले इनामों में विसंगति को लेकर हमारे यहाँ खूब बहस और तकरारें होती हैं। विसंगति इस बात की है कि हम स्कूली पाठ्यक्रम में इनाम या अंक शामिल करने का लगातार विरोध करते हैं। इनाम का विरोध इसलिए है कि उन खेलों को खेलने के लिए ही खेलना चाहिए न कि इनाम पाने के लिए। यह सच भी है। इसलिए हमसे अक्सर पूछा जाता है कि अगर टेनिस के लिए इनाम देना सही है तो भूगोल के लिए ऐसा करना भला गलत क्यों है। शायद उत्तर यह हो कि टेनिस का खेल स्वाभाविक रूप से स्पर्धा का खेल है। विपक्षी को हराना ही उसका उद्देश्य है। पर भूगोल का अध्ययन ऐसा नहीं है। मुझे भूगोल आता है। पर मुझे इससे क्या फर्क पड़ता है कि दूसरे को मुझसे ज़्यादा भूगोल आता है या कम। मुझे पता है कि बच्चे खेलकूद में इनाम चाहते हैं पर स्कूली विषयों में नहीं। कम से कम समरहिल में नहीं। और फिर समरहिल में हम खेलकूद में जीतने वाले बच्चों को हीरो नहीं बना डालते। कोई हॉकी टीम का कप्तान है इससे उसके मत को स्कूल की आम-सभा में अधिक महत्व नहीं मिलता।

समरहिल में खेलकूद अपनी सही जगह पर रखा जाता है। जो लड़का कोई खेल नहीं खेलता उसे कभी हीन नहीं माना जाता। जब बच्चों को यह आज़ादी मिलती है कि वे जैसे हैं वैसे बने रहें तो 'जियो और जीने दो' का नारा अभिव्यक्ति पाता है। खेलकूद में मेरी खुद की भी रुचि नहीं है। पर खेल की सही भावना में मेरी रुचि है। अगर समरहिल के शिक्षक बच्चों से कहते, "चलो बच्चों, खेल-मैदान की ओर बढ़ो!" तो यहाँ भी खेलकूद एक विकृत रूप ले लेता। खेल की असली भावना तब ही विकसित होती है जब यह आज़ादी हो कि खेलना चाहो तो खेलो और न खेलना हो तो न खेलो।

ब्रिटिश सरकार के निरीक्षकों की रिपोर्ट

शिक्षा मंत्रालय

महामहिम सम्राट के निरीक्षकों द्वारा

समरहिल स्कूल पर रिपोर्ट

लाइस्टन, पूर्व सफोल्क

निरीक्षण तिथि 20 व 21 जून, 1949

टिप्पणियाँ

1. यह रिपोर्ट गुप्त है एवं स्कूल के स्पष्ट निर्देशों के बिना कहीं भी प्रकाशित नहीं की जा सकती है। जब भी यह प्रकाशित की जाए तो समग्र रिपोर्ट ही प्रकाशित हो।
2. इस रिपोर्ट के स्वत्वाधिकार सम्राट के स्टेशनरी नियंत्रक के पास निहित हैं। नियंत्रक को इसके प्रकाशन से कोई आपत्ति नहीं है, बशर्त इससे सम्बंधित सभी लोगों को यह स्पष्ट हो कि स्वत्वाधिकार नियंत्रक के पास निहित हैं।
3. यह भी स्पष्ट हो कि इस रिपोर्ट को मंत्रालय द्वारा स्वीकृति के अर्थ में नहीं लिया जाएगा।

शिक्षा मंत्रालय

कर्ज़न स्ट्रीट

लंदन, डब्ल्यू. 1.

क्रमांक 38 बी/6/8

यह स्कूल विश्वभर में एक क्रान्तिकारी शैक्षणिक प्रयोग के रूप में विख्यात है, जहाँ इसके प्रधानाध्यापक के प्रकाशित और बहुचर्चित शिक्षा सिद्धान्तों को व्यवहार में उतारा जाता है। इसके निरीक्षण का कार्य कठिन पर रोचक रहा। कठिन इसलिए क्योंकि यहाँ की शिक्षण पद्धति अन्य स्कूलों से, जिनसे निरीक्षक परिचित हैं, भिन्न थी। और रोचक इसलिए क्योंकि इससे इस शिक्षण पद्धति के मूल्य का न केवल अवलोकन करने का बल्कि उसके आकलन का भी अवसर मिला।

स्कूल के सभी छात्र-छात्राएँ आवासीय हैं। इसका वार्षिक शुल्क एक सौ बीस पाउण्ड है। शिक्षकों को कम तनखाह देने के बावजूद (इस पर बाद में चर्चा की जाएगी), प्रधानाध्यापक को इसे चलाने में कठिनाई आ रही है। वे शुल्क इसलिए

नहीं बढ़ाना चाहते क्योंकि वे अभिभावकों की वित्तीय स्थिति से परिचित हैं। अन्य निजी आवासीय स्कूलों की तुलना में शुल्क कम होने के बावजूद यहाँ शिक्षकों का अनुपात अधिक है। निरीक्षकों को उन वित्तीय समस्याओं की बात सुन आश्चर्य हुआ जिनकी शिकायत प्रधानाध्यापक ने की। यह तो हिसाब-किताब को करीब से जाँचने पर ही पता चलेगा कि खर्च पूरा पड़ता है या सच में घाटा हो रहा है। किसी स्वतंत्र व अनुभवी सूत्र से ऑडिट करवाना शायद उचित रहे। तब तक इतना तो कहा जा सकता है कि बाकी चीज़ों की कमी हो या न हो, परन्तु बच्चों को खाना-पीना पर्याप्त मिलता है।

जिन लोगों ने प्रधानाध्यापक की रचनाएँ पढ़ी हैं वे उन सिद्धान्तों से वाकिफ होंगे जिन पर यहाँ की शिक्षण पद्धति आधारित है। उनमें से कुछ तो अब तक व्यापक रूप से स्वीकारे भी जा चुके हैं, कुछ का प्रभाव धीरे-धीरे बढ़ रहा है, तो कुछ ऐसे भी हैं जिनके प्रति अधिकांश शिक्षक व माता-पिता शंकालु हैं और उन्हें नापसन्द करते हैं। निरीक्षकों ने आकलन के सामान्य तरीके अपनाने की चेष्टा की जिससे जो कुछ किया जा रहा है उसे निष्पक्ष रूप से देखा जाए। पर लगता है कि स्कूल में अपनाए गए सिद्धान्तों और उसके लक्ष्यों के उल्लेख के बिना उन पर उचित टिप्पणी लिखना असम्भव है। फिर चाहे निरीक्षक उन सिद्धान्तों या लक्ष्यों से व्यक्तिगत स्तर पर सहमत हों या नहीं।

स्कूल जिन सिद्धान्तों पर आधारित है उनमें प्रमुख है आज़ादी। यह आज़ादी पूरी तरह अबाधित नहीं है। स्कूल के कई नियम हैं जो बच्चों के जीवन और शारीरिक सुरक्षा से सम्बंधित हैं। ये नियम बच्चे स्वयं बनाते हैं और प्रधानाध्यापक का अनुमोदन तब मिलता है जब वे पर्याप्त रूप से सख्त हों। उदाहरण के लिए बच्चे केवल तब तैर सकते हैं जब कम से कम दो ऐसे शिक्षक मौजूद हों जो जीवन-रक्षा में प्रशिक्षित हों। छोटे बच्चे, बड़ों के बिना स्कूल परिसर से बाहर नहीं जा सकते। ये व इसी तरह के दूसरे नियम अनिवार्य हैं और उन्हें तोड़ने पर आर्थिक सज़ा दी जाती है। पर शेष मामलों में बच्चों को दी जाने वाली आज़ादी निरीक्षकों ने दूसरे किसी स्कूल में नहीं देखी है। और यह आज़ादी वास्तविक है। उदाहरण के लिए किसी बच्चे के लिए कक्षाओं में जाना अनिवार्य नहीं है। जैसा बाद में स्पष्ट होगा, अधिकांश बच्चे नियमित रूप से कक्षाओं में जाते हैं पर एक ऐसा छात्र भी हमने पाया था जो तेरह साल से स्कूल में है और कभी कक्षा में नहीं गया। वह आज सटीक उपकरणों के निर्माता के यहाँ एक दक्ष कारीगर है। यह चरम उदाहरण महज़ इसलिए दिया जा रहा है जिससे स्पष्ट हो कि बच्चों को सच में आज़ादी दी जाती है, वह तब वापस नहीं ले ली जाती जब उसके परिणाम परेशान करने वाले लगने लगे। पर स्कूल अराजकतावादी सिद्धान्तों पर नहीं चलता। स्कूल की संसद में एक बच्चे की अध्यक्षता में नियम बनाए जाते हैं। सभी शिक्षक और बच्चे उसमें

इच्छानुसार भागीदारी करते हैं। इस सभा को चर्चा की असीमित और नियम बनाने की व्यापक शक्ति दी गई है। एक बार तो इस सभा ने एक शिक्षक के निलम्बन पर चर्चा की और यह दर्शाया कि वे पूरी घटना को न केवल समझ रहे हैं बल्कि यह फैसला उनके मत में उचित भी है। पर ऐसी घटनाएँ बिरले ही होती हैं। अमूमन आमसभा सामुदायिक जीवन के रोज़मर्रा के मसलों से सरोकार रखती है।

निरीक्षक पहले दिन आम सभा के एक सत्र में उपस्थित हो सके। मुख्य चर्चा रात को सोने के समय और निश्चित समयों पर रसोई में घुसने पर हुई। दोनों ही नियम सभा द्वारा बनाए गए थे। समस्याओं पर ज़ोरदार चर्चा हुई। सबने बेहिचक टिप्पणियाँ कीं। चर्चा व्यवस्थित थी। यद्यपि काफी समय फालतू के तर्कों में ज़ाया हुआ। निरीक्षक प्रधानाध्यापक के तर्क से सहमत थे कि बच्चों को अपने मामलों को सुलटाने का जो अनुभव हुआ वह ज़ाया हुए समय की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण था।

एक विवादास्पद मसले का उल्लेख आवश्यक है। वह है धार्मिक जीवन और शिक्षा का अभाव। धर्म पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। और अगर स्कूल की सभा इस विषय को प्रारम्भ करना चाहे तो सम्भवतः वह जोड़ा जा सकता है। इसी तरह अगर किसी बच्चे का किसी धर्म के प्रति व्यक्तिगत रुझान हो तो उसके सामने कोई बाधाएँ भी नहीं आएँगी। सभी बच्चे ऐसे परिवारों के हैं जो कट्टर ईसाई परिवार नहीं हैं और अब तक धार्मिक शिक्षा की कोई इच्छा उनके द्वारा प्रकट नहीं की गई है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि कई सिद्धान्तों व आचरणों का उपयोग स्कूल में होता है। स्कूल की कई बातें ऐसी हैं जिनका कोई भी ईसाई व्यक्ति अनुमोदन करे। धार्मिक शिक्षा के पूर्ण अभाव का क्या प्रभाव पड़ रहा है, यह दो दिन के निरीक्षण के दौरान नहीं समझा जा सकता है।

स्कूल की सामान्य रिपोर्ट लिखने के पहले यह परिचय देना आवश्यक लगा। इस वास्तविक आज़ादी की पृष्ठभूमि में ही स्कूल की व्यवस्था तथा गतिविधियों को देखा जाना चाहिए।

व्यवस्था

स्कूल में 4 से 16 वर्ष की आयु के 70 बच्चे हैं। ये बच्चे चार अलग-अलग भवनों में रहते हैं। इनका वर्णन परिसर सम्बंधी भाग में दिया जाएगा। इस भाग में जिस सीमित अर्थ में शिक्षा को समझा जाता है उसका वर्णन किया जाएगा। स्कूल में 6 कक्षाएँ हैं। ये कमोबेश आयु के आधार पर विभाजित हैं, पर इनको बनाने में

क्षमता पर अधिक बल दिया जाता है। इन कक्षाओं में सामान्य स्कूलों की तरह सप्ताह में पाँच बार चालीस-चालीस मिनट के पाँच पीरियड लगते हैं। उनके पढ़ने का स्थान और शिक्षक निश्चित हैं। अन्य स्कूलों से अन्तर केवल इस बात का है कि इस बात की कोई गारन्टी नहीं रहती कि कितने या कोई बच्चे उपस्थित होंगे या नहीं। निरीक्षकों ने कक्षाओं में उपस्थित रहकर और सवाल पूछकर यह जानने की कोशिश की कि दरअसल उनमें क्या होता है। पता चला कि जैसे-जैसे बच्चों की उम्र बढ़ती है वे अधिक नियमित होते जाते हैं। साथ ही अगर कोई बच्चा किसी कक्षा में जाना तय करता है तो सामान्यतः वह नियमित रूप से पढ़ने आता है। कक्षा कार्य व विषय के बीच का संतुलन सही है या नहीं यह जानना और भी कठिन था। क्योंकि कई बच्चे स्कूल सर्टिफिकेट का इम्तहान देने का निर्णय लेते हैं। ऐसे में विषयों का चयन परीक्षा की आवश्यकता से निर्धारित होता चलता है। पर छोटे बच्चों को चयन की पूर्ण स्वतंत्रता है। इस पद्धति के परिणाम अपनी समग्रता में खास प्रभावित नहीं करते। यह सच है कि बच्चे इच्छा और रुचि के साथ काम करते हैं। यह बात बड़ी स्फूर्तिदायक है। फिर भी उनकी उपलब्धियाँ विशेष नहीं हैं बल्कि इस बात के परिणाम हैं कि यह पद्धति ठीक से लागू नहीं हो पा रही है। इसके कारण निम्न लगते हैं:

1. छोटे बच्चों के लिए अच्छे शिक्षकों का अभाव जो पढ़ाई और अन्य गतिविधियों का निरीक्षण कर सकें, दोनों को समेकित कर सकें।
2. शिक्षण का स्तर। जहाँ तक समझा जा सका शिशुओं की शिक्षा प्रबुद्ध और प्रभावी है। कुछ बड़ी कक्षाओं में भी अच्छी पढ़ाई होती है। पर छोटी कक्षाओं में आठ, नौ और दस साल के बच्चों के लिए अच्छे शिक्षकों का अभाव है जो उन्हें प्रेरित और उत्साहित कर सकें। कुछ पुराने और औपचारिक तरीके भी काम में लाए जाते हैं। इस कारण जब बच्चे उस उम्र में आते हैं जब वे उन्नत काम के लिए प्रस्तुत हों तो शिक्षकों को काफी कठिनाइयाँ आती हैं। बड़े बच्चों की शिक्षा काफी अच्छी है और कुछ दृष्टान्तों में बेहतरीन भी कहलाई जा सकती है।
3. बच्चों को सही निर्देशन दे पाने की क्षमता का अभाव लगा। यह बात तो प्रशंसनीय है कि एक पन्द्रह साल की लड़की यह स्वयं तय करे कि वह फ्रेंच व जर्मन पढ़ना चाहती है, जिनकी उसने पहले उपेक्षा की थी। पर हर सप्ताह दो कक्षा जर्मन की और तीन फ्रेंच की पढ़ने के बाद उससे यह अपेक्षा रखना गैर ज़िम्मेदाराना है कि वह इन भाषाओं में दक्षता पा सकेगी। उसके दृढ़ संकल्प के बावजूद उसकी प्रगति धीमी थी। ज़ाहिर है उसे इन विषयों पर इससे अधिक समय बिताने की अनुमति दी जानी चाहिए। निरीक्षकों को लगा कि अपने काम की स्वयं योजना बनाने वाले बच्चों के लिए ट्यूटोरियल जैसी पद्धति अपनानी चाहिए।

4. एकान्त का अभाव। 'समरहिल जैसी जगह में पढ़ाई करना आसान नहीं है।' ये शब्द प्रधानाध्यापक के हैं। समरहिल गतिविधियों का गढ़ है। बच्चों का ध्यान और उनकी रुचि को आकर्षित करने के लिए वहाँ बहुत कुछ है। किसी बच्चे का अपना निजी कमरा नहीं है न ही अध्ययन के लिए अलग से कोई कमरे हैं। सच है कि जिसने पढ़ना तय कर ही लिया हो वह कोई न कोई जगह अपने लिए ढूँढ सकता है, पर इसके लिए जिस संकल्प शक्ति की ज़रूरत है वह बच्चों में बिरले ही मिलेगी। सोलह वर्ष की आयु के बाद स्कूल में कम बच्चे रहते हैं, यद्यपि इस पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। समरहिल के कुछ बच्चे बेहद क्षमतावान और बुद्धिमान हैं तथा इस बात में शंका है कि उन्हें बौद्धिक विकास के लिए जितना चाहिए वह उन्हें यहाँ मिल पा रहा है।

पर साथ ही जहाँ कहीं शिक्षण स्तर अच्छा है वहाँ कुछ बेहतरीन काम भी हो रहा है। कला यहाँ उत्कृष्ट है। समरहिल के बच्चों व अन्य सामान्य स्कूलों के बच्चों के चित्रों में कोई विशेष अन्तर ढूँढ पाना कठिन होगा। पर किसी भी मानदण्ड से देखें उनका काम अच्छा था। हस्तकलाओं में भी विविधता व श्रेष्ठता नज़र आई। निरीक्षण के दौरान एक भट्टी-निर्माण का काम चल रहा था। और मिट्टी के कई बेहतरीन बर्तन उसमें पकने को तैयार थे। पैर से चलाया जाने वाला करघा एक और शिल्प की सम्भावनाओं को साकार करेगा।

लेखन में भी काफी रचनात्मक काम हो रहा है। इसमें एक दीवार अखबार शामिल है। बच्चों के लिखे कई नाटक हर सत्र में मंचित होते हैं। नाटकों की काफी चर्चा हुई, पर क्योंकि उनकी पाण्डुलिपियाँ सम्भाल कर नहीं रखी जाती, उनकी गुणवत्ता का आकलन करना असम्भव था। कुछ समय पहले *मैकबेथ* का मंचन किया गया था, उसके लिए मंच सज्जा व वेशभूषा आदि स्कूल में ही तैयार किए गए थे। रोचक यह था कि *मैकबेथ* का मंचन बच्चों की इच्छा से किया गया था। स्वयं प्रधानाध्यापक बच्चों के लिखे नाटकों का मंचन ही पसन्द करते हैं।

शारीरिक शिक्षा स्कूल के सिद्धान्तों के अनुरूप होती है। कोई भी खेल या व्यायाम अनिवार्य नहीं है। फुटबॉल, क्रिकेट और टेनिस उत्साह से खेले जाते हैं। फुटबॉल की बारीकियाँ बच्चे समझते हैं क्योंकि शिक्षकों में एक फुटबॉल के विशेषज्ञ हैं। बच्चे शहर के दूसरे स्कूलों के साथ मैच आयोजित करते हैं। जिस दिन निरीक्षक पहुँचे, पड़ोस के स्कूल के साथ एक क्रिकेट मैच चल रहा था। पता चला कि समरहिल का सबसे बढ़िया खिलाड़ी उसमें शामिल नहीं हुआ क्योंकि उन्हें मालूम हुआ कि विपक्षी दल का सबसे अच्छा खिलाड़ी अस्वस्थ है।

कमरों से बाहर काफी समय गुज़ारा जाता है और बच्चे सक्रिय व स्वस्थ जीवन बिताते हैं। यह नज़र भी आता है। औपचारिक शारीरिक शिक्षा के अभाव से उन्हें

कितनी हानि दरअसल हो रही है, यह तो विशेषज्ञों द्वारा बारीक जाँच से ही पता चल सकता है।

परिसर

स्कूल जिस पसरे हुए परिसर में स्थित है वह बच्चों को मनोरंजन के तमाम अवसर देता है। मुख्य भवन, जो पहले निजी रिहायशी मकान था, में स्कूल के लिए एक हॉल, खाने का कमरा, बीमार बच्चों के लिए कमरे, कला कक्ष, एक छोटा हस्तकला कक्ष और लड़कियों के सोने के कमरे हैं। सबसे छोटे बच्चे एक अलग भवन में सोते हैं जहाँ उनके पढ़ने की कक्षा भी है। बड़े बच्चों के सोने के कमरे और बाकी कक्षाएँ बाग में झोपड़ियों में हैं। वहीं कुछ शिक्षकों के कमरे भी हैं। इन सभी कमरों के दरवाज़े बाग में खुलते हैं। पढ़ने के कमरे छोटे हैं पर क्योंकि पढ़ाई छोटे समूहों में ही होती है, वे पर्याप्त हैं। इनमें से एक सोने का कमरा बच्चों व शिक्षकों की मेहनत से बना है। दरअसल उसे एक अस्पताल के लिए बनाया गया था जिसकी अब तक कोई आवश्यकता नहीं पड़ी है। सामान्य मानदण्डों से देखें तो रिहायशी व्यवस्था आदिम किस्म की है पर स्कूल का स्वास्थ्य रिकॉर्ड अच्छा है। अतः इस व्यवस्था को संतोषजनक माना जा सकता है। स्नानघर पर्याप्त संख्या में हैं।

बाग में पसरा यह परिसर पहली नज़र में असाधारण रूप से आदिम और सार्वजनिक लगता है पर इससे एक स्थाई छुट्टी शिविर का सा वातावरण बनता है, जो इस स्कूल की विशेषता है। साथ ही आने-जाने वाले लोगों से परेशान हुए बिना बच्चे अपनी पढ़ाई जारी रख सकते हैं। निरीक्षण के दिन भी कई मेहमान मौजूद थे।

शिक्षक

शिक्षकों को रहने-खाने की व्यवस्था के साथ आठ पाउण्ड का मासिक वेतन दिया जाता है। ऐसे स्त्री-पुरुष तलाश पाना, जो न केवल स्कूल के सिद्धान्तों में विश्वास करते हों बल्कि इतने परिपक्व व संतुलित हों कि वे बच्चों के साथ समानता के स्तर पर रह सकें, जो शैक्षणिक योग्यताएँ रखते हों और कुशल शिक्षक हों, तब उनको सिर्फ आठ पाउण्ड के वेतन पर काम करने को रज़ामन्द करना, प्रधानाध्यापक के लिए ज़रूर एक कठिन काम होगा। समरहिल में काम करने की सिफारिश अधिकांश लोग नहीं करते। और फिर विश्वास, निस्वार्थता, दृढ़ चरित्र और क्षमताओं का यह आवश्यक मिश्रण खोज पाना काफी कठिन भी है। यह पहले ही

कहा जा चुका है कि स्कूल की सभी माँगों की पूर्ति यहाँ के शिक्षक नहीं कर पाते। फिर भी अन्य निजी स्कूलों, जहाँ शिक्षकों को अधिक वेतन दिया जाता है, की तुलना में ये शिक्षक कहीं बेहतर हैं। इनमें एक एडिनबरो से अँग्रेज़ी में एम.ए. ऑनर्स हैं, एक लिवरपूल से एम.ए. व एक बी.एस.सी. हैं, एक कैम्ब्रिज से हैं, एक शिक्षक लंदन से फ्रेंच व जर्मन में विशेषज्ञता प्राप्त हैं, एक कैम्ब्रिज से इतिहास में बी.ए. डिग्रीधारी हैं। चार शिक्षकों ने शिक्षक प्रशिक्षण प्राप्त किया है। इसमें कला व हस्तकला शिक्षक शामिल नहीं हैं जिनके पास विदेशी योग्यताएँ हैं और जो सबसे बेहतरीन शिक्षकों में हैं।

यद्यपि कई जगह विशेष प्रयास करने की ज़रूरत है। वर्तमान शिक्षक कमज़ोर नहीं हैं। अगर उन्हें कुछ प्रशिक्षणों से जुड़ने का, अन्य स्कूलों को देखने का, अवसर मिले, तो उनका नज़रिया व्यापक व ताज़ा हो सकेगा और उनका प्रदर्शन और बढ़िया हो सकेगा। पर साथ ही यह आशा रखना भी कठिन है कि सालाना 96 पाउण्ड के वेतन पर स्कूल अच्छे शिक्षकों को आकर्षित कर सकेगा। समस्या का सामना करना ही होगा।

प्रधानाध्यापक की अटूट आस्थाएँ हैं और वे निष्ठावान व्यक्ति हैं। उनका विश्वास और धैर्य असीमित ही होगा। उनमें वह ताकत है जो बिरले मिलती है। वे दृढ़ व्यक्तित्व के बावजूद किसी पर हावी नहीं होते। उन्हें उनके स्कूल में देखने पर उनके प्रति श्रद्धा जगती ही है फिर चाहे कोई उनसे असहमत हो या फिर उनके विचारों को नापसन्द करता हो। उनका स्वभाव विनोदी है, मानवतावादी है और वे कुशाग्र हैं। वे किसी भी स्थिति में एक बेहतरीन प्रधानाध्यापक होते। उनके सुखी पारिवारिक जीवन में बच्चे भी भागीदार हैं। जो उनके उदाहरण से उतना ही लाभ ले पाते होंगे जितना दूसरे ले सकते हैं।

वे शिक्षा का व्यापक अर्थ लेते हैं। उनके लिए शिक्षा जीवन को प्रचुरता से जीना सीखना है। इस रिपोर्ट में की गई कुछ आलोचना से वे सहमत भी हो सकते हैं। फिर भी उनका आग्रह यही रहेगा कि स्कूल का आकलन यहाँ सिखाए गए कौशलों या क्षमताओं के आधार पर न होकर इस बात से किया जाए कि वहाँ बच्चों को किस तरह विकसित होने दिया जाता है। आकलन के आधार पर कहा जा सकता है कि:

1. बच्चे बेहद जीवन्त और उत्साह से भरे हैं। ऊब और तटस्थता का नामों-निशान नहीं है। सन्तोष और सहिष्णुता का वातावरण स्कूल में है। जिस स्नेह से स्कूल के पुराने छात्र इसे याद करते हैं वह इसकी सफलता का द्योतक है। स्कूल सत्र की समाप्ति पर जो नाटक व नृत्य आदि होते हैं उसमें तकरीबन तीस ऐसे ही बच्चे उपस्थित होते हैं। और कई तो छुट्टियों में भी यहीं रहते हैं। यहाँ शायद यह जोड़ना उचित होगा कि स्कूल में पहले 'समस्यात्मक' बच्चे ही दाखिला

लेने आते थे। पर अब समाज के सभी तबकों से सब तरह के बच्चे दाखिल होते हैं।

2. बच्चों का आचरण आनन्ददायक है। आचरण के स्वीकृत मानदण्डों में शायद कभी-कभार कोई त्रुटियाँ नज़र आती हैं। पर उनका दोस्ताना व्यवहार, उनकी सहजता, उनमें झिझक और शर्म का अभाव ऐसे गुण हैं जिनसे उनके साथ रिश्ता बनाना बड़ा आसान है।
3. पहल करने की इच्छा, जिम्मेदारी और ईमानदारी की भावना आदि स्कूली पद्धति स्वतः प्रोत्साहित करती है और जहाँ तक समझा जा सकता है, ये सभी गुण यहाँ के छात्र-छात्राओं में पनप रहे हैं।
4. जो प्रमाण मिले हैं वे यह नहीं सुझाते कि स्कूल से निकलने के बाद समरहिल के छात्र-छात्राएँ सामान्य समाज में घुलमिल नहीं पाते। जिस तरह की सूचनाएँ नीचे दी जा रही हैं उनसे पूरी कहानी तो पता नहीं चलती पर यह संकेत तो मिलता ही है कि समरहिल की शिक्षा सफलता के विरुद्ध नहीं है। यहाँ के पूर्व छात्र-छात्राएँ सेना की इंजीनियरिंग शाखा में कप्तान हैं, एक क्वार्टरमास्टर सार्जेंट है, एक बॉम्बर पायलट है, एक स्क्वॉड्रन लीडर है, एक नर्सरी की नर्स, एक एयर हॉस्टेस, एक क्लैरिनेट वादिका, एक बैले डांसर, एक रेडियो ऑपरेटर, एक बड़ी कम्पनी में बाज़ार शोधकर्ता है, एक लघु कथा लेखक है जिसकी कहानियाँ राष्ट्रीय समाचार पत्रों में छपती हैं। स्कूल के बाद पूर्व छात्र-छात्राओं ने विविध डिग्रियाँ हासिल की हैं, कैम्ब्रिज से अर्थशास्त्र में बी.ए. ऑनर्स, स्कॉलर रॉयल कॉलेज ऑफ आर्ट्स, लंदन से बी.एस.सी. प्रथम श्रेणी ऑनर्स, कैम्ब्रिज से बी.ए. ऑनर्स, इतिहास, मैनचेस्टर से आधुनिक भाषा की डिग्री आदि।
5. प्रधानाध्यापक की शिक्षा दृष्टि स्कूल को एक ऐसे शैक्षणिक संस्थान का रूप देती है जहाँ मूलभूत काम बच्चों की रुचियों के अनुरूप होता है और कक्षा में हो रहा कार्य परीक्षा की आवश्यकताओं से निर्देशित नहीं होता। ऐसा शैक्षणिक वातावरण बनाना जहाँ विद्वता पनप सके, अपने आप में उपलब्धि है। पर दरअसल वह पनप नहीं रही। इसका एक बड़ा अवसर खो दिया जा रहा है। सभी स्तरों पर बेहतर शिक्षण, खासकर छोटे बच्चों के संदर्भ में बेहतर शिक्षण से यह पनप सकेगी। तभी यह रोचक प्रयोग स्वयं को सिद्ध कर सकेगा।

शिक्षा सिद्धान्तों और विधियों को लेकर कुछ शंकाएँ हैं। स्कूल को करीब से और एक अर्से तक जानने पर सम्भवतः कुछ शंकाएँ दूर हो सकेंगी। सम्भवतः इनमें से कुछ और गहराएँ। पर इस तथ्य में कोई शक नहीं है कि एक बेहद रोचक शैक्षिक शोध का प्रयास यहाँ चल रहा है जिसे सभी शिक्षाविदों को देखना चाहिए।

महामहिम सम्राट के निरीक्षकों की रिपोर्ट पर टीप

हमारा सौभाग्य था कि जो दो निरीक्षक हमारे यहाँ आए वे उदारवादी दृष्टिकोण रखते थे। हमने तुरन्त ही 'मिस्टर' कहना छोड़ दिया। उनके दो दिनों की यात्रा के दौरान हमारी तमाम दोस्ताना बहसें हुईं।

मुझे लगा कि निरीक्षकों को इस बात की आदत होती है कि वे किसी भी कक्षा में जाकर फ्रेंच की किताब उठाकर छात्रों से सवाल करें और तब यह जानने की कोशिश करें कि छात्र दरअसल कितना जानते हैं। मैंने कहा कि इस तरह का प्रशिक्षण व अनुभव एक ऐसे स्कूल के आकलन में निरर्थक रहेगा जहाँ पाठ मुख्य मानदण्ड ही नहीं हो। मैंने एक निरीक्षक से कहा, "आप समरहिल का निरीक्षण कर ही नहीं सकते क्योंकि हमारा मानदण्ड है आनन्द, ईमानदारी, संतुलन व सामाजिकता।" उन्होंने मुस्कुराकर कहा कि वे फिर भी कोशिश करेंगे। हमारे निरीक्षकों ने स्वयं को परिस्थिति के अनुकूल बनाने की अद्भुत क्षमता दर्शाई। यह भी स्पष्ट लगा कि उन्हें इस प्रक्रिया में मज़ा आया।

अजीब-अजीब चीज़ों पर उनका ध्यान गया। एक ने कहा, "सालों साल कक्षाओं में घुसते ही बच्चों को उछलकर सावधान होते देखने के बाद, इस बात से एक मज़ेदार धक्का लगा कि बच्चों ने हमारी ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया।" सच में हमारा सौभाग्य था कि वे दोनों निरीक्षण के लिए आए थे। पर रिपोर्ट की ओर लौटें।

'निरीक्षकों को स्कूल की वित्तीय समस्याओं से आश्चर्य हुआ...।' इसका जवाब कुछ हद तक तो यह है कि लोगों ने अपने बकाया कर्ज़ नहीं चुकाए हैं। रिपोर्ट में वार्षिक शुल्क 120 पाउण्ड का उल्लेख है। तब से हमने बढ़ती मंहगाई की स्थिति से निपटने के लिए औसतन 250 पाउण्ड लेने शुरू किए हैं। पर इसके बावजूद भवनों की मरम्मत, नई सामग्री की खरीद आदि के लिए कुछ नहीं बच पाता। एक तो हमारे यहाँ तोड़-फोड़ भी कठोर अनुशासन वाले स्कूलों की तुलना में अधिक होती है। क्योंकि हम बच्चों को गिरोह-मानसिकता के चरण से गुज़रने देते हैं। परिणामस्वरूप हमारे फर्नीचर का काफी नुकसान होता है। रिपोर्ट में सत्तर बच्चों का उल्लेख है, पर आज यह संख्या घटकर पैंतालीस रह गई है।

रिपोर्ट में बीच की उम्र के बच्चों की कमज़ोर पढ़ाई का जिक्र है। यह समस्या हमेशा रही है। अगर बेहतरीन शिक्षक भी होते, तब भी अन्य पब्लिक स्कूलों में जो पढ़ाई

करवाई जाती है, वह करवाना कठिन होता क्योंकि बच्चों को दूसरे तमाम काम करने की आज्ञादी है। अगर दूसरे स्कूलों में भी दस-बारह साल के बच्चों को पाठ पढ़ने के बदले पेड़ों पर चढ़ने या गड्ढे खोदने का विकल्प मिलता तो उनके स्तर भी हमारी तरह होते। हम यह स्वीकारते हैं कि हमारे छात्र-छात्राएँ एक ऐसे चरण से गुज़रते हैं जब उनका शैक्षणिक स्तर गिरता है, क्योंकि हमारी मान्यता है कि जीवन के उस चरण में उनके लिए खेलना, पढ़ने से अधिक महत्वपूर्ण है।

अगर हम यह भी मान लें कि छोटे बच्चों का पढ़ाई में पिछड़ने का महत्व है, तो भी सच्चाई यह है कि साल भर बाद यही बच्चे जब बड़े बच्चों की जमात में आते हैं, वे ऑक्सफोर्ड परीक्षाएँ अच्छे अंक लेकर पास करते हैं। हमारे छात्रों को उन्तालीस विषयों में जाँचा गया, औसतन साढ़े छह विषय प्रति छात्र। चौबीस बच्चों को बहुत अच्छा मिला, जो 70 प्रतिशत से अधिक था। इन उन्तालीस विषयों में केवल एक अनुत्तीर्ण था। ज़ाहिर है कि जूनियर छात्रों के रूप में उनकी जो भी कमी थी वह सीनियर कक्षाओं में नहीं रही।

मुझे स्वयं देर से शुरू करने वाले बच्चे पसन्द हैं। चार साल की उम्र में जो बच्चे मिल्टन कण्ठस्थ कर सुना सकते हैं, उन्हें चौतीस वर्ष की उम्र में शराबी और कामचोर बनते भी मैंने देखा है। मुझे ऐसे लोग अच्छे लगते हैं जो तिरेपन साल की उम्र में यह कहते हैं कि उन्हें यह पता नहीं कि जीवन में उन्हें क्या बनना है। मुझे लगता है कि जो बच्चा सात साल की उम्र में यह जानता है कि वह भविष्य में क्या बनना चाहता है, तो बड़े होने पर उसका दृष्टिकोण निहायत रूढ़िवादी रहेगा।

रिपोर्ट में लिखा है: 'ऐसी परिस्थितियाँ बनाना जिसमें शैक्षणिक श्रेष्ठता पनप सके अपने आप में एक उपलब्धि है, पर वह श्रेष्ठता दरअसल पनप नहीं रही है और यूँ एक अवसर खो दिया जा रहा है।' रिपोर्ट का यह अकेला अनुच्छेद है जिसमें दोनों निरीक्षक अपने शैक्षणिक आग्रह से ऊपर नहीं उठ सके हैं। पर हमारी पद्धति तब कारगर होती है जब बच्चा स्वयं पढ़ाई करना चाहता है, जैसा हमारे परीक्षा परिणामों से स्पष्ट है। सम्भवतः निरीक्षकों का अर्थ यह रहा हो कि छोटे बच्चों का बेहतर शिक्षण स्तर अधिक बच्चों को मैट्रिक परीक्षाएँ लेने को प्रेरित करेगा।

क्या वह समय आ नहीं चुका है जब हम पढ़ाई-लिखाई को शिक्षा में उसकी सही जगह पर रखें? मुझे लगता है कि शैक्षणिक पढ़ाई बच्चों में अनुचित और गैर तार्किक बदलाव लाने की कोशिश में लगी है। कभी सोचता हूँ कि समरहिल के कुछ पूर्व छात्र-छात्राओं पर जो बाद में ड्रेस डिज़ाइनर, बैले नर्तक, हेयर ड्रेसर, संगीतज्ञ, नर्स, मैकेनिक, इंजीनियर या दर्ज़न भर कलाकार बने, उन पर अगर इस तरह की पढ़ाई थोपी जाती तो उनका क्या हश्र होता।

फिर भी यह रिपोर्ट न्यायपूर्ण है, उदार है। मैं इसे इसलिए छाप रहा हूँ ताकि पढ़ने वाले समरहिल पर मेरे अलावा दूसरे विचार भी जानें। यह ध्यान रहे कि रिपोर्ट में किसी प्रकार की सरकारी मान्यता समरहिल को नहीं दी गई है। यह मान्यता अगर मिलती तो व्यक्तिगत स्तर पर दो कारणों से लाभ होता। एक तो हमारे शिक्षकों को राजकीय अनुदान योजना का फायदा मिलता और अभिभावक अपने बच्चों के लिए स्थानीय काउन्सिल से वित्तीय सहायता ले पाते।

मैं यहाँ यह भी दर्ज करना चाहूँगा कि समरहिल को शिक्षा मंत्रालय से कभी परेशानी नहीं हुई है। जब भी मैंने प्रश्न पूछे हैं या स्वयं मंत्रालय गया हूँ मेरे साथ शिष्ट और दोस्ताना व्यवहार किया गया है। एक ही अवसर था जब युद्ध के तुरन्त बाद मंत्रालय ने एक स्कैंडिनेवियन अभिभावक को स्कूल के लिए पूर्व निर्मित सामग्री आयात कर एक मकान बनाने की अनुमति नहीं दी।

जब मैं यूरोपीय सरकारों को उनके देशों में चल रहे निजी स्कूलों में आधिकारिक रुचि लेते देखता हूँ तो मुझे खुशी होती है कि मैं एक ऐसे देश में रहता और काम कर रहा हूँ जो निजी उपक्रमों को पनपने देता है। मैं अपने बच्चों के प्रति सहनशील हूँ, मंत्रालय मेरे स्कूल के प्रति सहनशीलता बरतता है। मैं सन्तुष्ट हूँ।

समरहिल का भविष्य

अब, जब मैं अपने चौरासी साल में हूँ मुझे लगता है मैं शिक्षा पर एक और किताब नहीं लिखने वाला क्योंकि नया कहने को मेरे पास कुछ भी नहीं होगा। फिर भी मुझे जो कहना है वह मेरे पक्ष में है। वह यह कि मैंने पिछले चालीस वर्ष बच्चों पर सिद्धान्त लिखते नहीं गुज़ारे हैं। मैंने जो कुछ लिखा है, वह अधिकतर बच्चों के साथ रहते हुए उनके अवलोकन पर आधारित है। यह सच है कि फ्रॉयड, होमर लेन आदि ने मुझे प्रेरणा दी है, पर मैंने उस समय उनके सिद्धान्तों को त्यागा है जब वास्तविकता ने इन विशेषज्ञों को गलत सिद्ध किया है।

लेखक का काम विचित्र होता है। रेडियो प्रसारण की तरह ही लेखक उन लोगों को सन्देश भेजता है जिन्हें न वह देख सकता है, न गिन सकता है। मेरे पाठक विशेष लोग रहे हैं। जिसे अधिकारिक रूप से 'जनता' कहा जाता है, वे मुझे नहीं जानते। बी.बी.सी. शिक्षा के किसी प्रसारण के लिए मुझे कभी आमंत्रित नहीं करेगी। कोई विश्वविद्यालय, मय मेरे खुद का विश्वविद्यालय एडिनबरो, मुझे कभी

कोई मानद सम्मान नहीं देगा। जब मैं ऑक्सफोर्ड या कैम्ब्रिज के छात्रों को भाषण देने जाता हूँ तो कोई प्रोफेसर मुझे सुनने नहीं आता। दरअसल मुझे इन सभी बातों पर गर्व है। क्योंकि अगर मुझे अधिकारिक मान्यता मिली होती तो मैं समझता मैं भी पुरातनपंथी हो चला हूँ।

एक समय था जब मैं इस बात से नाराज़ होता था कि *द टाइम्स* कभी मेरे पत्र नहीं छापता है, पर आज मैं इस नामंजूरी को प्रशंसा मानता हूँ।

मैं यह नहीं कह रहा कि कद्र पाने की इच्छा से मैं दूर हो गया हूँ। पर आयु के साथ बदलाव आते हैं। खासकर मूल्यों में बदलाव आते हैं। हाल में मैंने स्वीडिश लोगों को भाषण दिया। उसमें सात सौ श्रोता एक ऐसे हॉल में ठसे थे जो छह सौ लोगों के लिए बना था। पर मेरे मन में उल्लास या घमण्ड का भाव नहीं पनपा। मैंने सोचा कि मैं इन चीज़ों के प्रति उदासीन बन चुका हूँ। जब तक मैंने खुद से यह सवाल नहीं पूछा, “अगर श्रोताओं की संख्या केवल दस होती तो?” जवाब मिला, “मुझे बड़ा गुस्सा आता।” अर्थात् अगर घमण्ड नहीं है, तो खीज का अभाव भी नहीं है।

उम्र के साथ महत्वाकांक्षा मर जाती है पर कद्र का मामला दूसरा ही है। मुझे ऐसी कोई किताब जिसका शीर्षक *प्रगतिशील स्कूलों का इतिहास* हो, देखना पसन्द नहीं आता जिसमें मेरे प्रयासों को नज़रअंदाज़ किया गया हो। सच तो यह है कि मैं ऐसे किसी व्यक्ति से कभी नहीं मिला जो कद्र के प्रति उदासीन हो।

उम्र का एक विनोदी पक्ष भी है। मैं सालों से युवा वर्ग तक पहुँचने की कोशिश करता रहा हूँ। युवा छात्र-छात्राओं, युवा शिक्षकों, युवा माता-पिता तक। क्योंकि मैंने उम्र को विकास में बाधा माना है पर अब जब मैं स्वयं बूढ़ा हो गया हूँ, जिनके विरुद्ध बात करता रहा उनकी श्रेणी में आ गया हूँ, तो मेरी भावनाएँ बदली हैं। हाल में मैं कैम्ब्रिज में तीन सौ छात्रों को भाषण दे रहा था, मुझे लगा कि पूरे सभागार में मैं ही सबसे युवा हूँ। *सच में लगा*। मैंने उनसे कहा, “मेरे जैसा व्यक्ति को तुम्हें आज्ञादी के बारे में बताने की क्या ज़रूरत है?” दरअसल अब मैं युवावस्था और वृद्धावस्था को बाँटकर नहीं देखता। मेरा मानना है कि व्यक्ति के सोच का उसकी उम्र से खास लेना-देना नहीं है। मैं बीस वर्ष के छोक़रों को जानता हूँ जो नब्बे साल के हैं और साठ साल के लोगों को भी जो बस बीस के ही हैं। यहाँ मैं ताज़गी, उत्साह, रूढ़िवादिता का अभाव, जड़ता और निराशावाद की बात कर रहा हूँ।

मुझे पता नहीं कि उम्र के साथ मैं सौम्य बना हूँ या नहीं। बेवकूफ लोगों को मैं अब कम झेल पाता हूँ, उबाऊ बातचीत मुझे अधिक खिझाती है, लोगों के व्यक्तिगत इतिहास में मेरी रुचि नहीं है। दरअसल पिछले तीस वर्षों में मुझे इन्हें खूब झेलना पड़ा है। मुझे अब चीज़ों में भी रुचि नहीं रही, मुझे कुछ खरीदने की इच्छा नहीं

होती। सालों से कपड़ों की सज़ी दुकानों की ओर मैंने झाँका तक नहीं है। यहाँ तक कि यूस्टन रोड पर मेरी पसन्दीदा औज़ारों की दुकान भी मुझे आकर्षित नहीं करती।

यह सच है कि मैं उम्र के उस पड़ाव पर पहुँच चुका हूँ कि बच्चों का शोर मुझे पहले से ज़्यादा थका देता है। फिर भी मैं यह नहीं कह सकता कि उम्र के साथ मेरे धीरज में कमी आई है। मैं अब भी किसी बच्चे को तमाम गलतियाँ करते, वही पुरानी ग्रंथियों को फिर-फिर जीते देख सकता हूँ, क्योंकि मेरा पक्का विश्वास है कि वह समय के साथ एक अच्छा नागरिक बनेगा। उम्र के साथ भय भी घटते हैं। पर यह भी सच है कि साहस भी कम होता जाता है। सालों पहले अगर कोई बच्चा यह धमकी देता कि उसकी बात नहीं मानी गई तो वह खिड़की से कूद जाएगा, तो मैं उसे कूदने को कह देता था। पर आज शायद मैं ऐसा नहीं कर सकूँगा।

एक सवाल अक्सर मुझसे पूछा जाता है, “क्या समरहिल एक व्यक्ति का प्रयास नहीं है?” ऐसा कतई नहीं है। रोज़मर्रा के काम में मेरी पत्नी, हमारे तमाम शिक्षक, उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितना मैं हूँ। *यह स्कूल विशेष इसलिए बना है क्योंकि यहाँ यह विचार लागू किया जा सका है कि बच्चे के विकास में बाधा न डालो, उस पर कोई दबाव न डालो।*

क्या समरहिल विश्वविख्यात है? बिल्कुल नहीं। अगर उसके बारे में किसी को पता है भी, तो बस मुट्ठीभर शिक्षाविदों को। स्कैन्डिनेविया में इसकी ख्याति है। पिछले तीस सालों से नॉर्वे, स्वीडन, डेन्मार्क के छात्र-छात्राएँ यहाँ आ रहे हैं, कभी-कभी तो एक बार में बीस तक। ऑस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड, दक्षिण अफ्रीका, कनाडा के भी छात्र आए हैं। मेरी किताबें कई भाषाओं में अनुदित हो चुकी हैं, जिनमें जापानी, हीब्रू, हिन्दुस्तानी व गुजराती शामिल हैं। जापान में भी समरहिल का कुछ प्रभाव है। तीस साल पहले साइशी शिमोडा समरहिल आए थे जो जापान के जाने-माने शिक्षाविद् हैं। उनके द्वारा किए गए मेरी किताबों के अनुवाद भी जापान में काफी बिके हैं। सुनता हूँ टोक्यो के शिक्षक हमारी शिक्षा पद्धति पर चर्चा करने के लिए भी मिलते हैं। शिमोडा ने एक बार फिर 1958 में एक माह हमारे साथ बिताया। सूडान के एक स्कूल के प्राध्यापक ने मुझे बताया कि वहाँ के शिक्षक समरहिल में बहुत रुचि रखते हैं।

मैं अनुवादों, यात्राओं और पत्रों के तथ्य बिना किसी भ्रम के लिख रहा हूँ। आप ऑक्सफोर्ड स्ट्रीट में हज़ार लोगों को रोककर यह पूछें कि ‘समरहिल’ क्या है तो शायद कोई भी व्यक्ति स्कूल के नाम तक से परिचित नहीं होगा। ज़ाहिर है कि खुद की महत्ता या महत्ता के अभाव को लेकर मन में विनोद का भाव होना चाहिए।

मुझे नहीं लगता कि समरहिल की शिक्षण पद्धति का दुनिया में इस्तेमाल होगा, अगर कभी हो तो ऐसा एक लम्बे समय तक नहीं हो सकेगा। सम्भव है कि दुनिया

एक बेहतर पद्धति ईजाद कर ले। कोई खोखला और घमण्डी व्यक्ति ही यह सोच सकता है कि उसका काम शिक्षा में अन्तिम काम है। पर यह तय है कि दुनिया को एक बेहतर शिक्षण पद्धति ढूँढनी ही होगी। क्योंकि राजनीति मानवता को नहीं बचाएगी। उसने कभी यह किया ही नहीं है। अधिकांश राजनैतिक समाचार पत्रों में हमेशा घृणा ही भरी रही है। लोग साम्यवादी इसलिए हैं क्योंकि वे अमीरों से घृणा करते हैं, इसलिए नहीं कि वे गरीबों से प्यार करते हैं।

हमारे परिवार प्यार और आनन्द भरे किस तरह बन सकेंगे, जब वे एक ऐसे देश के किसी कोने में बसे हों, जिसके पास सामाजिक घृणा फैलाने के सैकड़ों तरीके हों। आप समझ रहे होंगे कि मैं शिक्षा को परीक्षाएँ, कक्षाएँ और पाठ पढ़ने की बात क्यों नहीं मानता। स्कूल मूल मुद्दे से बचते हैं। ग्रीक भाषा, गणित या इतिहास का ज्ञान हमारे घर-परिवारों को न तो अधिक प्रेममय बनाते हैं न ही हमारे बच्चों को कुण्ठाओं व झिझक से छुटकारा दिला सकते हैं या उनके माता-पिता को मानसिक रोगों से मुक्त बना सकते हैं।

समरहिल का अपना भविष्य महत्वपूर्ण नहीं है। पर समरहिल के मूल विचार का भविष्य मानवता के लिए महत्वपूर्ण है। नई पीढ़ियों को आज़ादी के साथ पनपने का मौका देना ज़रूरी है। आज़ादी देना ही प्रेम देना है। और प्रेम ही दुनिया को बचा सकता है।